पावमानी-वरदा वेदमाता

स्तुता मया वरदा वेदमाता—व्याख्या



ओ३म्

'असतो मा सद्गमय-तमसो मा ज्योतिर्गमय-मृत्योर्मामृतं गमय'

"कृण्वन्तो विश्वमार्यम्"

"श्रद्धा साहित्य प्रकाशन का अठाईसवां पुष्प"

पावमानी

वरदा-वेदमाता

लेखक— रामप्रसाद वेदालंकार

आचार्य एवं उपकुलपति (Pro-Vice-Chancellor)

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

[आचार्य गोवर्धन शास्त्री स्मृति पुरस्कार (१९८१) से सम्मानित एवं पुरस्कृत, द्वारा संघड़ विद्या सभा ट्रस्ट, जयपुर]

पता—

रामप्रसाद वेदालंकार

कर्म कुटीर, आर्यनगर, ज्वालापुर

जि० सहारनपुर, (उ. प्र.) पिन-249407

फोन-*314*

प्रकाशक—

बहिन प्रमिला जी, हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश)

प्रथम संस्करण) दयानन्दाब्द-१५८ (सम्वत् २०३८

४००० प्रतियाँ) (मई १९८२

आप का दान—श्रद्धा साहित्य प्रकाशन का ज्ञान

मूल्य—पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना

नोट-न्यून से न्यून २० रु० तक का दान दानसूची में प्रकाशित होगा

विषय सूची

मूल्य—"श्रद्धा साहित्य प्रकाशन" से सरल सुबोध रूप में प्रकाशित होने वाला वैदिक साहित्य दानी महानुभावों के दान से प्रकाशित होता है और सुपात्रों को प्रदान करने का प्रयास किया जाता है। पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना ही इस का मूल्य है।

जो महानुभाव इस सरल सुबोध वैदिक साहित्य को उपयोगी समझ कर मंगवाना चाहें वा इसमें अपना आर्थिक सहयोग प्रदान करना चाहें, वे कृपया लेखक के पते पर पत्र व्यवहार करें। न्यून से न्यून २० रु० तक की राशि किसी एक पुस्तक की दान सूची में प्रकाशित की जायेगी, शेष फुटकर रूप में।

श्री चन्द्रकान्त जी

जिनकी स्मृति में यह पुस्तक प्रकाशित हुई

श्री चन्द्रकान्त जी का जन्म ४ जुलाई १९२० को बोगुटा सिंगरेनी कालरीज आन्ध्र प्रदेश में हुआ। इन की पूज्य माता जी का नाम व्यंकटम्मा और पिता जी का नाम श्री नरसीमलू था। श्री नरसीमलू जी हेडमास्टर थे। वे अपने कर्त्तव्य पालन करने के प्रति अत्यन्त सजग रहते थे। आप की एक सन्तान हुई, परन्तु फिर १६ वर्ष तक जब कोई सन्तान नहीं हुई तो आप की पत्नी-व्यंकटम्मा ने एक अन्य सुयोग्य लड़की शान्ता जी के साथ आप का दूसरा विवाह करा दिया। इस के बाद आप की ८ सन्तानें और हुई। जिन में एक और व्यंकटम्मा से और ७ शान्ता जी से। श्री चन्द्रकान्त जी अपनी माता की द्वितीय तथा अपने पिता की तृतीय सन्तान थे। घर-परिवार में परस्पर इतना प्यार रहता कि सभी बच्चे अपनी दोनों माताओं का और अपने पूज्य पिता जी का बड़ा सम्मान करते थे। दोनों माताएं और पिता भी सब सन्तानों के प्रति समान रूप से स्नेह रखते थे। दुर्भाग्यवश जब असमय में ही श्री नरसीमलू संसार से चल बसे तो उस समय श्री चन्द्रकान्त जी की आयु १६ वर्ष की थी। आप के बड़े भाई श्री व्यङ्कट स्वामी का विवाह १२ वर्ष की आयु में हो चुका था। पिता की मृत्यु के समय पर उस की छोटी-छोटी दो सन्तानें थीं। वे भी अध्यापक ही थे, अतः वे भी बड़ी कठिनाई से अपने परिवार का किसी तरह पालन कर पा रहे थे। अतः परिवार का सारा बोझा

सहज ही श्री चन्द्रकान्त जी पर आ पड़ा। इसलिये उन्होंने सर्विस करनी चाही। सौभाग्य से जहाँ इन के पिता जी लगे हुए थे उसी स्कूल में इन्हें अध्यापक लगा लिया गया। पर इतने बड़े परिवार का भला इतनी छोटी सी आय से क्या कार्य चलता? अतः श्री चन्द्रकान्त जी इस के साथ-साथ प्रातः सायं ट्यूशन भी करने लगे। एक वर्ष सर्विस करने के उपरान्त लगभग १८ वर्ष की आयु में इन की प्रथम श्रेणी आ जाने के कारण इन्हें (B.E.) वेचुलर आफ इञ्जिनीयरिंग में प्रवेश मिल सकता था, परन्तु (B.E.) बी. ई. का कोर्स ५ वर्ष था और 'डिप्लोमा इन इञ्जिनीयरिंग' का कोर्स २ वर्ष का। इन के भाई की हार्दिक इच्छा थी कि ये (B.E.) वेलुचर आफ इञ्जिनीयरिंग ५ वर्ष का कोर्स ही करें पर इधर इन के ऊपर घर के खर्चे का भी पर्याप्त भार था, अतः इन्हों ने २ वर्ष का डिप्लोमा कोर्स ही किया। यह कोर्स करते हुए भी यह साथ-साथ प्रातः सायम् ट्यूशन करते थे। क्योंकि इन्हें अपने खर्चे के साथ-साथ घर के खर्चे के लिये भी पैसा भेजना पड़ता था। यह अंग्रेजी और मैथ्स की ट्यूशन करते थे।

इञ्जिनीयरिंग में डिप्लोमा प्राप्त होते ही इन को हैदराबाद में सर्विस मिल गई। तब ये सुपरवाईजर बन गए। सुपरवाईजर बनते ही इन्हों ने अपने सारे परिवार को हैदराबाद बुला लिया। इस सर्विस के साथ-साथ प्राईवेट रूपसे ये विल्डिंग्स बनवाने का कार्य भी करने लगे। सौभाग्य की बात समझिये कि दो वर्ष में ही इन्हें पर्याप्त लाभ हुआ। इस पर आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त कमजोर उस परिवार की स्थिति कुछ ठीक सी हो गई। उन्हीं

दिनों प्रभु की कृपा समझिये कि इन्हें उन दिनों ६००० रुपये में बड़ा ही सस्ता बहुत बड़ा मकान मिल गया। इस के उपरान्त १३ जनवरी १६४८ में इन का आदरणीय "प्रमिला" बहिन जी से विवाह हो गया। पूज्य बहिन जी का ३१ दिसम्बर १६३१ को नागपुर में जन्म हुआ। इन की पूज्या माता जी का नाम सत्यवती और पूज्य पिता जी का नाम श्री नरहरी जी था। [इन की अन्य भी तीन बहिनें हैं, सिन्धु, सुधा, शैलजा जिन के नाम हैं। इनके अतिरिक्त एक भाई भी इन का था जिस का नाम शरद् चन्द्र था। तीनों ही बहिनें विवाहित हैं और सब तरह से अपने घर में प्रसन्न हैं। भाई और भावज के संसार से विदा होने पर इन की पूज्या माँ और इनके भतीजे रमाकान्त, रविकान्त भी इन्हीं के यहां ही रह रहे हैं। यह सब भी आदरणीय भाई चन्द्रकान्त जी के विशाल एवं उदार हृदय का परिणाम है·········।] बहिन प्रमिला जी के पूज्य पिता जी इन्शोरेसं कम्पनी में 'इन्स्पैक्टर थे। यह परिवार जहाँ सुपठित था, वहाँ अन्य भी अनेक सद्गुणों का आगार था। पूज्य बहिन जी का जब विवाह हुआ तो तब ये इन्टर पास थीं। विवाह के अनन्तर भी इन के भीतर विद्या के प्रति प्रगढ़ अनुराग बना रहा। तभी तो ये अपने गृहकार्यों के उत्तरदायित्वों को बड़ी श्रद्धापूर्वक निभाती हुई प्राईवेट B.A. कर सकीं और साथ-साथ हिन्दी की परिक्षाएं भी दे सकीं। इन के हृदय में पढ़ने-पढ़ाने के प्रति प्रगाढ़ अनुराग रहने पर भी श्री चन्द्रकान्त जी आदरणीय बहिन जी की नौकरी के पक्ष में कभी नहीं रहे। पर यह सब होते हुए भी उन्होंने आदरणीय बहिन जी को अन्य सामाजिक कार्यों से

कभी रोका-टोका नहीं। प्रभु ने इन दोनों के जीवनों में जो हार्दिक सामाञ्जस्य रखा, जो हार्दिक एकत्व और ऊँचापन्न रखा वह भी अपने आप में एक बड़ा ही प्रेरणा का स्रोत है। १६४६ में आप को एक पुत्ररत्न की उपलब्धि हुई जिस का नाम 'श्री रजनीकान्त' है। इस के उपरान्त ७ वर्षों में हृदयकान्त, प्रतिमा, अनिल और संजीव का जन्म हुआ।

श्री चन्द्रकान्त जी का हृदय इतना उदार और विशाल था कि पिता जी की मृत्यु के उपरान्त सब घर के भार को वे बड़े प्यार और श्रद्धा भाव से ही वहन करते रहे। आर्थिक कठिनाईयों को दूर करने और अपने सब घर-परिवार को सुयोग्य, सुखी करने के लिये इन्होंने बहुत तप किया था। छोटी ही आयु में सर्विस की, उस सर्विस में कार्य नहीं चला तो प्रातः सायं टयूशनें पढ़ाई। उस से भी कार्य नहीं चला तो मशीन पर कपड़े भी सिये इत्यादि। पर यह सब कुछ ये इसी लिये करते रहे कि किसी तरह सब परिवार को कुछ राहत मिल सके और वह कठिनाई से उभर कर कुछ बन सके। यह सब करने के लिये ये सुदीर्घ काल तक तप करते रहे। उसी का परिणाम समझिये कि आज प्रभु की कृपा से इन के सभी भाई बहिनें बहुत ही सुयोग्य और ऊंचे-ऊंचे पदों पर आसीन हैं। इन के एक बड़े भाई व्यङ्कट स्वामी एक्साईज के डिप्टी कमिश्नर हैं, दूसरे श्री लक्ष्मीकान्त जी असिस्टेंट इञ्जिनीयर के पद से रिटायर हुए हैं। स्वयं श्री चन्द्रकान्त जी एग्जिक्यूटिव इञ्जीनियर (यूनिवर्सिटी इञ्जीनियर) के पद से पिछले वर्ष ही सेवानिवृत्त हुए हैं, श्री कृष्ण स्वामी रीजनल इन्स्पेक्टर आफ

फैक्ट्री हैं। डा० पाण्डुरंगम जी F.R C.S. हैं और लन्दन में सर्जरी के बहुत बड़े डाक्टर हैं। डाक्टर अनन्तराम जी हैड आफ दि डिपार्टमेन्ट आफ माईनिंग खड़कपूर I-I.T. वेस्ट बंगाल में आजकल डीन भी हैं। बहिन दमयन्ती इन्टर कालेज में प्रिंसिपल हैं। श्री नारायण स्वामी M.R.C.P. लन्दन तथा M.D. जर्मनी से कर के आजकल न्यूयार्क में बड़े डाक्टर हैं। बहिन सरोज बी. एस-सी., बी.एड. हैं जिनके पति बहुत बड़े डाक्टर हैं। हैदराबाद में इनका अपना ही हास्पिटल है।

अपने भाई बहिनों के प्रति खूब परिश्रम कर जहाँ श्री चन्द्रकान्त जी ने अपने उत्तरदायित्व को मन-वचन-कर्म से निभाया है वहाँ उन्होंने अपनी पत्नी के हार्दिक सहयोग से अपनी सन्तान को हर दृष्टि से खूब उठाया और आगे बढ़ाया है। योग्य बनाने के साथ-साथ विशेषता यह है कि इनकी सन्तान आस्तिक-ईश्वर विश्वासी और धार्मिक है। बच्चे अपने पूज्य माता-पिता आदि के प्रति हार्दिक श्रद्धा और हृदय में बड़ा सेवाभाव भी रखते हैं। यों सभी सन्तान इस समय अमेरिका में है और बहुत बड़ी-बड़ी पोस्टों पर है। तीन इञ्जीनियर हैं, एक डाक्टर है तथा बेटी प्रतिमा ने भी बी.एस-सी, बी-एड. कर लिया है। अपनी शिक्षा-दीक्षा के साथ-साथ ये सभी धार्मिक हैं और परम पिता परमात्मा के प्रति हृदय में अनुराग रखते हुए प्रति दिन प्रातः सायं प्रभु का नामस्मरण भी करने का ध्यान रखते हैं।

श्री चन्द्रकान्त जी केवल ५ वर्ष सुपरवाईजर रहे, बाद में ये असिस्टेन्ट इञ्जीनियर बने और ५५ वर्ष की आयु में रिटायर

हो गए। पुन इःन्हें हैदराबाद यूनिवर्सिटी में एग्जीक्यूटिव इञ्जीनियर की पोस्ट मिली। जहाँ भी ये कार्य करते रहे, बड़ी लग्न से, बड़ी ईमानदारी से कार्य करते रहे। ये कार्य करने में कभी थकते न थे। ये कार्य परिवर्तन को ही अपने विश्राम की संज्ञा देते थे।इस प्रकार इनका जीवन निम्न उक्ति को सही अर्थों में चरितार्थ करता है–"कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः।"

धार्मिक विचारों की दृष्टि से पहले वे मूर्ति पूजा करते थे, विचारों के सनातन धर्मी थे, परन्तु जहाँ पूज्य महात्मा आनन्द स्वामी जी सरस्वती और आर्यसमाज के वे सम्पर्क में आए तो मूर्ति पूजा को छोड़ कर वे भी फिर आदरणीया बहिन प्रमिला जी के अनुसार गायत्री मन्त्र का जप करने लगे। इस विषय में भी वे सदा प्रदर्शन से दूर रह कर प्रातःकाल ३ बजे उठ जाते और बड़ी श्रद्धा से जप आदि करते···।

दुर्भाग्य समझिये कि १४ जुलाई १९८१ को सहसा वे प्रातः पौने चार बजे सब के देखते-देखते संसार से विदा हो गए। पर संसार से विदा होने से ८ दिन पूर्व उन्होंने पूज्य बहिन प्रमिला जी से कहा कि–"देखो! यदि मैं कभी तुम से पूर्व संसार से चला जाऊँ तो बताओ तुम सब क्या करोगे······?" बहिन जी ने कहा "ऐसी बातें मत किया करो······।" इस पर भी वे बोले–"देखो! मेरा दाह कर्म वैदिक रीति से कराना आदि······।" जिस दिन वे गए उस प्रभात में जब वे २॥ बजे उठे तो बहिन जी ने कहा, "आप इतनी सवेरे कैसे उठ गए"? 'इस पर वे बोले–"देवि! लेटे

लेटे भी क्या होगा कुछ कर लिया जाय तो अधिक अच्छा रहेगा।" यह कहकर वे अपना गायत्री जप आदि करते रहे……और फिर वे सहसा पोने चार बजे संसार से विदा भी हो गए……। और सारा परिवार देखता ही रह गया……।

अपने बाल्यकाल से वे बड़े ही उदार चित्त रहे, सदा अपने को गौण रखकर ही वे जीते रहे। और अगर उन्होंने कुछ विशेष उन्नति की भी, तो वह भी इसलिये कि वे अपने परिवार को संसार के कष्टों से-अभावों से कुछ उभार सकें। इन के इस स्वभाव ने सदा सभी घर के वासियों को बड़ा ही सुख दिया। अपने इसी उत्तम कोमल स्वभाव के कारण श्री भाई चन्द्रकान्त जी जब बहिन प्रमिला जी के भाई और भावज दोनों संसार से कूच कर गए तो उन की माता जी अर्थात् अपनी सास को तथा उन के दोनों पोतों रमाकान्त तथा रविकान्त जी को भी अपने घर पर ही ले आए और निरन्तर उन की सब प्रकार से देख-रेख करने लगे। आज ७ वर्षों से वे इन्हीं से ही सब प्रकार से स्नेह-सम्मान पा रहे हैं। बच्चों की शिक्षा-दीक्षा की भी अपने बच्चों के समान ही व्यवस्था हो रही है। पूज्या माता जी का वे अपनी माँ के समान ही सदा मान-सम्मान पूर्वक ध्यान रखते रहे हैं। जिस प्रकार उन्होंने अपने आप को एवं अपने घर-परिवारों को कष्टों और अभावों से उभारने में जी-जान से परिश्रम किया वैसे ही दयालु हृदय वाले होने के कारण उन्होंने अनेकों हैरान-परेशान व्यक्तियों को रोजी-रोजगार पर लगाने के लिये सब प्रकार से दौड़-धूप की। ऐसे शुभ परोपकारमय कार्यों में वे सदा बड़े उत्साह से जाते थे,

और अपना ही खर्च कर जब यह सब कार्य कर आते थे तो वे बड़े प्रसन्न होते थे। अपने सेवाकाल में वे उपदा अर्थात् रिश्वत से सदा दूर रहे। छल-कपट करने से वे सदा कोसों दूर रहने का प्रयास करते थे। जो भी कुछ वे करते रहे वह तल्लीनता से करते रहे, इमानदारी से करते रहे।

गृह कार्यों में भी वे बड़े कुशल और सहृदय रहे। तभी वे अपने घर-परिवार में आने वाले हर व्यक्ति की खूब मान-सम्मान सेवा-सत्कार, आदर-आवभगत किया करते थे। ऐसा करने में उन्हें बड़ी खुशी मिलती थी। उन को हार्दिक प्रसन्नता होती थी जब घर पर आकर कोई अन्न-पानी, फल-फूल आदि का सेवन करता। वे सदा प्रयास करते थे कि कोई अतिथि बिना कुछ खाए-पीये घर से खाली न जाए।

वे स्वयं बड़े धार्मिक थे। अतः पूज्य प्रमिला बहिन जी ने जब-जब भी हरिद्वार व्यास आश्रम आदि में साधना शिविर आदि में जाने की इच्छा अभिव्यक्त की तो स्वयं अपनी व्यस्तता-वश भले ही वे नहीं आ सके पर उन्होंने बहिन प्रमिला जी को कभी रोका नहीं वरन् सहर्ष भेजा और उन्होंने जो कहा उस से बढ़-चढ़कर धन आदि प्रदान किया। धन आदि का उन्होंने जैसा भी उपभोग किया उन्होंने कभी उन से हिसाब नहीं मांगा। क्योंकि वे यह जानते थे कि "मेरी पत्नी धर्मपरायण बड़ी है, अतः जो भी वे करेंगी वह सब अच्छा ही करेंगी......।"

मैं ने (लेखक ने) स्वयं आदरणीय भाई चन्द्रकान्त जी के दर्शन किये हैं। एक अच्छे पुत्र में, एक अच्छे भाई में, एक अच्छे पति में, एक अच्छे पिता में, एक अच्छे रिश्तेदार-सम्बन्धी में, एक अच्छे हमदर्द इनसान में, एक अच्छे नागरिक में जो गुण कर्म स्वभाव होने चाहियें उन्हें मैं ने उनके जीवन में देखा सुना और अनुभव किया। मुझ को उन से मिलकर हार्दिक प्रसन्नता हुई थी। यदि वे और अधिक जीते तो मुझे बड़ा विश्वास था कि उन के हाथों से बहुतों का भला होता, बहुतों का हित और उपकार होता, पर प्रभु को सम्भवतः ऐसा स्वीकार नहीं था। अतः वे हम सब के मध्य में से सहसा विदा हो गए। प्रभु के विधान के सम्मुख सब को नमस्कार करना ही होता है। कोई भी तो उस की करनी में कुछ दखल नहीं दे सकता।

श्री भाई चन्द्रकान्त जी के जीवन में कुछ ऐसी विशेषताएं थीं जिन के श्रवण करने और अध्ययन करने से एक नवोदित युवक को जो कि नाना प्रकार की कठिनाईयों और अभावों से घिरा हुआ है, उस को बड़ी सुन्दर प्रेरणाएं मिल सकती हैं, पर विस्तारभय से उन्हें लिखने में यहाँ संकोच किया जा रहा है। वे अपने पीछे बड़ी उत्तम और सुयोग्य सन्तान छोड़ गये हैं। प्रभु कृपा करे उस सन्तान को सब प्रकार से शक्ति और सद्बुद्धि प्रदान करे कि वह अपने पूज्य आदर्श पिता जी की जीवन रूपी फुलवाड़ी में से सद्गुण रूपी पुष्पों को चुन-चुन कर उन से अपने जीवनों को

अलंकृत एवं सुगन्धित करें। वे उन की सुन्दर दिव्य जीवनी से प्रेरणा ले कर सदा आगे बढ़ती रहे और ऊपर उठती रहे।

पुज्या प्रमिला बहिन जी भी उस देवता स्वरूप अपने पति के सहसा संसार से विदा हो जाने पर भी धर्मपरायण होने से स्वाध्याय सत्संग आदि के द्वारा बड़े ही धैर्य और सान्त्वना पूर्वक अपना जीवन व्यतीत करने का प्रयास कर रही हैं। वे सदा यह प्रयास करती रही हैं कि वे अपनी सन्तान को माता के प्यार के साथ-साथ पिता का प्यार और सूझ-बूझ भी प्रदान कर सकें। वे अपनी सन्तति के निर्माण के प्रति पूर्ण सजग हैं। वह उस अपने देवता स्वरूप पति के प्रति बड़ी कृतज्ञ हैं जिन्होंने महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती जी एवं आर्यसमाज के सिद्धान्तानुसार मूर्तिपूजा आदि से विरक्त हो कर इन के साथ बड़ी श्रद्धा भक्ति से प्रातः उठ-उठ कर खूब जप-तप किया और कई अंशों में पूज्या बहिन जी को भी अपने से पीछे छोड़ गए। ऐसे महान् और पुण्य स्वरूप अपने पति की पुण्य स्मृति में पूज्या बहिन प्रमिला जी पावमानी —"वरदा वेदमाता" पुस्तक प्रकाशित कर आप सब स्वाध्यायप्रेमी एवं सत्संग प्रेमी महानुभावों के कर-कमलों में समर्पित कर रही हैं। यदि इसके स्वाध्याय से आप सब को कुछ प्रेरणा और उत्साह मिल सका और आप अपने जीवन में कुछ आगे बढ़ सके और कुछ ऊंचा उठ सके तो वे अपने अर्थ को सार्थक समझेंगी।

विनीत—रामप्रसाद वेदालङ्कार

भूमिका

आदरणीय भाई श्री चन्द्रकान्त जी १४ जुलाई १६८१ को जब सहसा प्रातः स्वर्ग सिधार गये तो पूज्या बहिन प्रमिला जी कुछ ही दिनों बाद अपने दो सुपुत्रों सहित हरिद्वार पधारीं। उन्होंने माता भागवन्ती से संस्थापित व्यास आश्रम हरिद्वार में शान्ति यज्ञ किया और वापिस चली गयीं। कुछ समय के उपरान्त उन के पत्र से एवं आदरणीय बहिन सरोज आहरी जी होशियारपुर के पत्र से मुझे ज्ञात हुआ कि आदरणीय बहिन प्रमिला जी अपने देवतास्वरूप पति श्री चन्द्रकान्त जी की पुण्य स्मृति में वैदिक साहित्य सम्बन्धी एक ऐसी सरल-सुबोध पुस्तक अपने धर्म परायण अध्यात्म प्रेमी भाई-बहिनों के हाथों में समर्पित करना चाहती हैं जिस से उन्हें अपने जीवन में सुख-शान्ति एवं आनन्दरूप लक्ष्य की ओर कुछ आगे बढ़ने और कुछ ऊंचा उठने की प्रेरणा मिले। बहुत ही शीघ्र मेरे पास श्रीमान्य भाई श्री चन्द्रकान्त जी का एवं उन के पीछे रहे हुए परिवार का भी परिचय आदि आ गया। यों तो दिवंगत भाई श्री चन्द्रकान्त जी का जीवन भी अपने आप में हर उस नवयुवक के लिये मार्ग दर्शाने वाले प्रकाश स्तम्भ का कार्य करता है जो कि चहुँ ओर से केवल कठिनाईयों एवं अभावों से ही घिरा हुआ नहीं है वरन् चारों ओर से अनेकों के पालन-पोषण रूप उत्तरदायित्वों से भी घिरा हुआ है···—। तो भी पूज्या बहिन प्रमिला जी की हार्दिक इच्छा थी कि—"उन की स्मृति में

उन के संक्षिप्त परिचय पूर्वक एक ऐसी धार्मिक सरल-सुबोध पुस्तक प्रकाशित हो जिस से जहाँ उन को धैर्यपूर्वक जीवन में अपने जीवन लक्ष्य की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा मिले वहाँ अन्य महानुभावों को भी उस से सुख-शान्ति एवं आनन्द मिले।" सो उन्हीं की हार्दिक इच्छा का ही परिणाम समझिये जो यह पावमानी—"वरदा वेदमाता" पुस्तक स्वाध्याय प्रेमी महानुभावों के कर कमलों में प्रसादरूप में प्रस्तुत है। यदि इस के स्वाध्याय से इन महानुभावों को अपने जीवन में बाह्य एवं आन्तरिक दृष्टि से कुछ उन्नत-समुन्नत होने का सौभाग्य मिला तो इस पुस्तक की प्रकाशिका मान्या बहिन प्रमिला जी अपने अर्थ को सार्थक एवं लेखक अपनी लेखनी को कृतार्थ समझेंगे।

विनीत—रामप्रसाद वेदालङ्कार

आचार्य एवं उपकुलपति

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

समर्पण

जिस प्राण प्रिय परमेश्वर की अपार अनुकम्पा और अपने पूज्य गुरुजनों के उदार हृदय से प्रदान किये हुए ज्ञानप्रसाद एवं आशीर्वाद से "श्रद्धा साहित्य प्रकाशन' के इस "अठाईसवें पुष्प' पावमानी—"वरदा वेदमाता" नामक पुस्तक को मैं आप स्वाध्याय प्रेमी महानुभावों के कर कमलों तक पहुँचा सका हूँ, उन्हीं के पावन चरणों में मेरा यह अल्प प्रयास समर्पित है।

विनीत—रामप्रसाद वेदालङ्कार

आचार्य एवं उपकुलपति

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

ओ३म्

पावमानी-

"वरदा वेदमाता"

[वरदान देने वाली वेदमाता-वेदवाणी]

मन्त्र का ऋषिः – ब्रह्मा, देवता–गायत्री

ओ३म् स्तुता मया वरदा वेदमाता
प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम् ।
आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम् ।
मह्यं दत्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् ।।अथर्ववेद १६-७१-१ ।।

अन्वय :—मया [या] वरदा वेदमाता स्तुता [सा] द्विजानां पावमानी [अस्ति], प्रचोदयन्ताम् । [सा] आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसं [ददाति] । [हे मनुष्याः !] मह्यं दत्वा ब्रह्मलोकं व्रजत ।

सं० अन्वयार्थ :--परमात्मा कहता है—"हे मनुष्यो ! मेरे द्वारा वेदमाता की स्तुति की गई है वा मेरे द्वारा वरदा वेदमाता कही गई है । यह द्विजों को पवित्र करने वाली है । द्विज इस का प्रचार करें । यह आयु, प्राण, प्रजा, पशु, कीर्ति, द्रविण और ब्रह्म-

वर्चस को देने वाली है। [हे मोक्षाभिलाषी मानवो ! तुम यह सब कुछ] मुझे देकर ब्रह्मलोक की ओर चलो।

अन्वयार्थ :—परमात्मा कहता है–"हे मनुष्यो ! (मया वरदा वेदमाता स्तुता) मैं ने तुम्हारे लिये वरदान देने वाली वेदमाता प्रस्तुत कर दी है वा मैं ने तुम्हारे लिये "वरदा वेदमाता" की स्तुति कर दी है। वह वरदा वेदमाता (द्विजानां पावमानी) द्विजों को पवित्र करने वाली है। द्विजों को चाहिये कि वे उस वेदवाणी का (प्रचोदयन्ताम्) प्रचार और प्रसार करें। यह वरदा वेदमाता (आयु; प्राणं प्रजां, पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्) आयु–दीर्घायु, प्राण-शारीरिक शक्ति, प्रजा-प्रकृष्ट संस्कारों वाली सन्तान, पशु-दूध देने वाले पशु, कीर्ति–यश, द्रविण–धन-बल और ब्रह्मवर्चस्– ब्रह्म तेज–ब्रह्मबल रूप वरों को प्रदान करने वाली है। हे मनुष्यो ! यदि तुम मोक्ष चाहते हो तो यह सब कुछ (मह्यं दत्वा ब्रह्मलोकं व्रजत) मुझे प्रदान कर ब्रह्मलोक अर्थात् मोक्ष की ओर चलो।

अन्वयार्थ :—परमेश्वर मनुष्यों को उपदेश देता है कि "हे मनुष्यो ! जिस पावमानी वरदा वेदमाता को मैं ने तुम सब के सुख और कल्याण के लिये–तुम्हारे ऐहिक सुख और पारमार्थिक कल्याण के लिये-तुम्हारे सांसारिक अभ्युदय और निःश्रेयस-मोक्षानन्द के लिये प्रस्तुत किया है, वह वेदमाता द्विजों को सदा पवित्र करने वाली है। द्विजों का कर्तव्य है कि वे इस वेदवाणी का जी-जान से प्रचार करें–प्रसार करें। यह वरदा वेदमाता–वेदवाणी

अपना स्वाध्याय करने वाले तथा तदनुसार आचरण करने वाले को दीर्घायु, प्राणशक्ति, सुसन्तान, दूध देने वाले पशु और कीर्ति-यश आदि सप्तविध सांसारिक वरदान प्रदान करने वाली है। पर अगर इन सप्तविध सांसारिक ऐश्वर्यों को पाकर भी कोई इन से तृप्त–परितृप्त नहीं होता, कोई इन से आनन्दविभोर नहीं होता, तो उसे चाहिये कि वह इन सब पदार्थों को उस प्यारे और सब जग से न्यारे प्रभु के प्रति समर्पित कर के उस का अन्तःकरण से ध्यान करे, तो फिर वह प्रभु उसे भीतर से ऐसा तृप्त–परितृप्त कर देगा कि फिर उसे अपनी तृप्ति के लिये कहीं और सिर नहीं पटकना पड़ेगा······।

संसार में जब एक बालक आता है तो वह रोता है। बच्चे के इस रोने के सम्बन्ध में कविजन–ज्ञानीजन अपने-अपने ढग से कल्पना करते हैं। परन्तु हम यहाँ विचार करते हैं कि वह बच्चा आखिर क्यों रोता है ?

इस बात पर विचार करने से पूर्व मुझे एक घटना स्मरण हो आई, वह यह कि—एक बार सुदूर पहाड़ी प्रदेश से एक सज्जन हरिद्वार आया। उस की आयु सम्भवतः ५०-६० की होगी। उस के साथ दस-बारह वर्ष का एक बालक भी था। जब वह सज्जन हरिद्वार पहुँचा तो उस को पण्डों ने घेर लिया। उन्होंने उसे पूछा, "कहाँ के वासी, कहाँ के वासी इत्यादि ?" उस के अपना स्थान आदि बतला देने के उपरान्त उसे एक पण्डा अपने डेरे पर ले

ले गया। पण्डे के डेरे पर उस बालक के सहित यह सज्जन पहुँच कर अभी बैठा ही था कि पण्डे ने इस की बही निकाली और इस के बाप-दादों का नाम क्रमशः बतलाना आरम्भ कर दिया। इस से उस सज्जन को बड़ी तसल्ली हुई, यह जान कर कि वह पण्डा वास्तव में उस के कुल का ही पण्डा है और वह स्वयं उस का ही यजमान है। पण्डे ने यजमान से पूछा—"यजमान! आप बहुत समय के बाद आए हैं।" यजमान बोला—"हाँ देवता! मैं अवश्य देर आया हूँ। क्योंकि घर के सौ काम-धन्धें होते हैं। अतः उन से निकल कर आना बड़ा कठिन होता है। जहाँ तक मुझे स्मरण है, मैं जब छोटा था तो कभी अपने पूज्य पिता जी के साथ हरिद्वार आया था, या फिर मुझे आज आने का सौभाग्य मिला है।" इस के उपरान्त पण्डा बोला कि—"यजमान! यदि आप का मन हो तो पहिले गंगा जी में स्नान कर लो और स्नान कर के कुछ दान-पुण्य आदि कर लो।" वह सज्जन बोला—'ठीक है, तुरत दान महां कल्याण। जो कुछ भी हाथ से हो जाए वह अच्छा ही है। क्योंकि फिर बाद में कुछ रहे या न रहे, अतः अभी चल कर गंगा जी में स्नान करते हैं। और स्नान-दान आदि से निवृत्त हो कर फिर आकर अच्छी तरह विश्राम कर लेंगे.........।"

यजमान की यह बात सुनकर वह पण्डा बालक सहित उस को गंगा जी के तट पर ले गया। वहाँ यजमान ने खूब स्नान किया। यहाँ तक कि परिवार के एक-एक सदस्यों का नाम ले-ले

कर उस ने गंगा जी में डुबकी लगाई। इस के बाद पण्डे ने उस को गंगा जी में ही खड़ा किया और कहा कि—"यजमान ! हाथ में गंगाजल लो और सङ्कल्प करो।" यजमान ने हाथ में गंगाजल लिया और पण्डे ने उस से कुछ बुलवाया और बुलवाकर पुनः उस से गंगा जी में ही जल छुड़वा दिया। यह कार्य पण्डे ने जब तीन बार यजमान से करा लिया तो फिर वह उस से बोला कि—"यजमान ! तुम ने सर्वस्व दान का सङ्कल्प पढ़ लिया है, अतः अब तुम्हारे पास जो भी कुछ धन-द्रव्य आदि हो वह तुम दान कर दो। कहने का अर्थ यह है कि आप के कानों में जो स्वर्णाभूषण हैं, जो ये कानों की मुर्कियाँ हैं वे उतार दो। इसके अतिरिक्त भी जो धन-रुपया-पैसा आदि तुम्हारे पास हैं, वह सब भी तुम अब दान कर दो······।" यजमान बोला—"पण्डे ! जब हम आप के डेरे पर पहुँचे थे तो तब तो आप ने कहा था कि—"चलो पहिले गंगा जी में स्नान कर के कुछ दान-पुण्य कर दो।" हम ने भी यह सोचा कि चलो आप के कहने पर पहले गंगा जी में स्नान कर के कुछ दान-पुण्य आदि कर लें, तो फिर आकर कुछ विश्राम कर हरिद्वार में घूम-घाम लेंगे और कुछ अन्य गीता-रामायण-जनेऊ आदि-आदि खरीद लेंगे। क्योंकि यदि हम पहिले ही खरीदारी में लग गए तो सम्भवतः फिर हमारे पास कुछ दान आदि करने को शेष न रहे···। पर पण्डे देवता ! अब जब आप गंगाजी पर मुझे ले आए और मुझे आप ने स्नान कराया तो अब आप कहते हैं कि मैं सब कुछ दान कर दूं, इसलिये कि मैं ने सर्वस्व दान का

सङ्कल्प पढ़ लिया है। पण्डे देवता ! मुझे तो इस सङ्कल्प का अर्थ भी ज्ञात नहीं, आप ने जैसा बुलवा दिया, मैं ने बोल दिया–पढ़ लिया। पर आप ही जरा सोचो कि—"यदि आप के कथनानुसार मैं यह सब कुछ आप को दे दूं जो कुछ कि मेरे पास है, तो आप ही बताओ कि मैं और मेरा यह बालक पांच-चार दिन कैसे हरिद्वार में रह सकेंगे वा कैसे ऋषिकेश आदि जा सकेंगे वा अन्य कई ग्रामवासियों ने जो गीता-रामायण-महाभारत, जनेऊ माला आदि वस्तुएं मंगवाई हैं उन को कैसे ले जा कर दे सकेंगे ? इस पर पण्डा बोला कि—"देखो ! भोजन तो जब तक तुम यहाँ रहना हमारे यहाँ ही करना, और जब तुम वापिस जाना तो किराया भी हम से ले जाना घर पहुँच कर फिर तुम मनी-आर्डर कर के वह पैसा भेज देना···। पर अब तो जो कुछ तुम्हारे पास है वह सब कुछ तो तुम्हें दे ही देना चाहिये, क्योंकि तुम ने सर्वस्व दान का सङ्कल्प पढ़ लिया है।"

यजमान बोला—"पण्डे देवता ! जब हम घर से चले थे तो आप ने कहा था कि मैं सर्वप्रथम गंगा जी में स्नान करके कुछ दान-पुण्य कर दूं। मैं ने भी सोचा कि चलो जो कुछ दान हो जाए वही ठीक है, नहीं तो बाद मे कुछ हो पाए या न हो पाए। पर पण्डे देवता ! यहाँ आकर अब तू कहता है कि मैं ने सर्वस्व दान का सङ्कल्प पढ़ लिया है अतः मुझे अब सब कुछ दान कर देना चाहिये। यहाँ तक कि कानों की स्वर्णिम मुर्कियाँ-बालियाँ भी

उतार कर मुझे तुम्हें दे देनी चाहियें……। पण्डे देवता ! यदि मैं ऐसा न कर सकूं तो क्या होगा और कर डालूं तो क्या होगा ?" इस पर पण्डा बोलता है—'यजमान ! यदि तो तू अपने सर्वस्व दान के सङ्कल्प के अनुसार अपना सब कुछ दान कर देगा तो तू सीधा स्वर्ग में जायेगा। और अगर तू ऐसा नहीं करेगा तो तू फिर नरक में जायेगा। मैं यह सोचता हूँ कि तुम्हें जरा से लोभ में आकर अपना परलोक नहीं बिगाड़ना चाहिये। और मैं तुम से यह कह भी रहा हूँ कि तुम भोजन आदि हमारे यहाँ करना, जाते समय किराया भी ले जाना। घर पहुँचते ही हमें फिर वह भेज देना। आगे आप की जो इच्छा ! हम तो यह सोचते हैं कि तुम्हारा परलोक नहीं बिगड़ना चाहिये।

यजमान बिचारे का सिर चकराने लगा—वह पहाड़ी प्रदेश का सीधा-सादा व्यक्ति सोचने लगा कि पण्डे के कथनानुसार एक ओर तो हर-हालत में नरक है। यदि इस सङ्कल्प के अनुसार जो कि मेरी नासमझी में इस ने मुझ से पढ़ा लिया है, मैं अपना सब कुछ इसे दे देता हूँ तो फिर मैं यहां दो चार दिन रहते हुए और यहाँ से वापिस जाते हुए नरक अर्थात् कष्ट भोगूंगा। पर इस के कथनानुसार संसार से विदा होने के बाद सीधा स्वर्ग को जाऊँगा। और अगर मैं यहाँ इस सङ्कल्प के अनुसार इस को सब कुछ नहीं देता थोड़ा सा ही कुछ दे देता हूँ तो फिर यहाँ कुछ सुख-सुविधा से ५-७ दिन रह सकूंगा और जिस-जिस ने जिस-जिस वस्तु गीता, रामा-

यण, महाभारात, जनेऊ प्रसाद वा माला आदि-आदि के लिये पैसे दिये हैं उन-उन के लिये भी सब वस्तुएं बड़े आराम से ले जा सकूंगा। साथ-साथ हरिद्वार ऋषिकेश आदि में भी घूम-घाम कर कुछ खा-पी सकूंगा और बच्चे को भी कुछ खिला-पिला सकूंगा। घर में भी मैं तब प्रत्येक व्यक्ति के लिये कुछ न कुछ ले जा सकूंगा। वापिस जाते हुए यात्रा में भी मुझे तब कुछ विशेष अभाव नहीं खटकेगा। पर इस सूरत में पण्डे का कहना यह है कि फिर मेरा परलोक बिगड़ जायेगा और मैं नरक में जाऊँगा……।

यह सोचते-सोचते अन्त में उस धर्मभीरु पहाड़ी प्रदेश के सज्जन व्यक्ति ने यह निर्णय किया कि—"चलो इस लोक में तो जैसे-तैसे मैं कुछ गुजारा कर लूंगा पर अगर मेरा परलोक बिगड़ गया तो फिर क्या होगा? अतः मैं अब पण्डे के कथनानुसार सब कुछ दिये देता हूँ ताकि मेरा परलोक न बिगड़े।" यह निर्णय कर वह अपने कानों की सोने की मुर्कियाँ-कर्णाभरण उतार कर पहले पण्डे को देता है, फिर हाथ की अंगूठी दे देता है, फिर जो कुछ भी जेब में था वह सब भी उस को समर्पित कर देता है। इधर बाहर से तो फिर पण्डा उसे आशीर्वाद देता है पर भीतर से उसका मन उस पण्डे के व्यवहार से दुःखी बड़ा होता है। पर फिर भी वह मौन रहता है और आशीर्वाद पाकर उस के चरण स्पर्श करता है। इस के बाद पण्डा तो उस को "तुम सीधा हमारे डेरे पर आराम से आ जाना" यह कह कर चला गया किसी दूसरी

मुर्गी की तलाश में, और वह बिचारा सीधा-सादा आदमी अपने कर्मों को रोता हुआ उस बच्चे के साथ-साथ वहाँ डेरे पर आ गया। वह स्वयं कुछ सङ्कोची स्वभाव का था अतः उस डेरे पर अन्य किसी से वह भोजन आदि का कुछ कह नहीं पाया और वह मुख्य पण्डा उस समय वहाँ था नहीं। जेब भी अब सब प्रकार से ख़ाली थी। अतः वे अब कुछ खरीद कर भी न स्वयं कुछ खा-पी सकते थे और न ही अपने बालक को कुछ खिला-पिला सकते थे। उस का मन बड़ा दुःखी हुआ। आखिर वह बच्चे को लेकर बाहिर चला ही गया और अपने कर्मों को रोता हुआ इधर-उधर अपना दुःखड़ा सुनाने लगा। इस पर दयावश कईयों ने उसे आना-दो आने-चार आने आदि दिये। पर आखिर उनसे क्या बनता था! अन्त में एक ऐसा सज्जन उन को मिला जिस ने यह अनुभव किया कि "यह व्यक्ति मंगता तो नहीं लगता पर फिर भी ऐसे मांग रहा है।" उस ने आराम से उस की राम कहानी सुनी और बोला—"भैय्या यह बताओ तुम्हारा घर तक दोनों का कितना किराया लगता है?" उस ने कहा कि "दोनों का कम से कम ५०-६० रुपये लगेंगे।" उस व्यक्ति को दया आयी। उस ने उन्हें पूरा किराया भी दे दिया और साथ में रास्ते में खाने-पीने के लिये भी दस-बीस रुपये और दे दिये। इस पर उस ने उस सज्जन का हृदय से धन्यवाद करते हुए कहा कि—"देवता स्वरूप! आप मुझे एक कागज पर अपना पता लिख दें तो मैं आप को यह रुपया भेज दूं।" पर बहुत कहने

पर भी उस सज्जन ने अपना पता लिख कर नहीं दिया और यह कह दिया कि "तुम नहीं मानते तो जहाँ तुम्हारा मन चाहे किसी अच्छे काम में यह पैसा लगा देना।" यह सुनकर वह हृदय से उन के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हुआ प्रभु का धन्यवाद करता हुआ अपने डेरे की ओर चल पड़ा। रास्ते में उस ने बच्चे को कुछ खिला दिया और स्वयं भी थोड़ी-बहुत अपने पेट की आग बुझा कर वह अपने डेरे पर आ गया। आते ही उस ने अपना कम्बल और कपड़ों का थैला उठा लिया और चलने को तैय्यार हो गया। चलते हुए उसे पता लगा कि वह प्रधान पण्डा आ गया है। तब वह बच्चे को साथ ले गया और उस ने उस को प्रणाम किया। पण्डे ने पूछा—"भोजन कर लिया है ? वह सज्जन बोला– "हाँ महाराज ! कर लिया है।" अच्छा तो यजमान अब तुम कहाँ चले ? यजमान बोला "महाराज ! घर वापिस चले हैं।" पण्डा बोला—"यजमान ! फिर कब आप गंगामाई के दर्शन करने आयेंगे ?" यजमान अपने इन दोनों कानों को हाथ लगाते हुए बोला—"महाराज ! इस जन्म में तो मैं कभी भूलकर भी पुनः हरिद्वार नहीं आऊँगा, अगले जन्म की भगवान् जाने !" यह कह कर पण्डे के चरण स्पर्श कर के वह चल दिया।

इस घटना को यहां लिख कर मैं [लेखक] यह दर्शाना चाहता हूँ कि इस जगत् में एक वह व्यक्ति जोकि ५०-६० वर्ष की आयु का है फिर उसके साथ १०-१२ वर्ष का बालक भी है। वह भी

यदि कभी कहीं ऐसी जगह पहुँच जाता है जहाँ कि उस का कोई भी व्यक्ति परिचित नहीं होता और न ही उस की जेब में किसी भी कारणवश कोई पैसा शेष रह पाता है, न ही उस के पास अपनी भूख मिटाने की कोई थोड़ी बहुत सामग्री होती है, तो ऐसा व्यक्ति भी तब कितना हैरान-परेशान हो जाता है, कितना दुःखी होता है, कितना दीन–हीन–अनाथ हो जाता है, कितना कष्ट कलेश का अनुभव करता है, कितना स्थान-स्थान पर अपना रोना-धोना सुनाने लगता है इत्यादि ? मैंने [लेखक ने] अनेकों ऐसी घटनाएं स्वयं देखी हैं कि जिन में एक २०-२५ वर्ष का युवक भी धन के अभाव में जब घर जाने के लिये गाड़ी पर चढ़ जाता है तो वह चैकर के सामने कैसे अपना दुःखड़ा रोता है आदि । चालीस-चालीस, पचास-पचास वर्ष के पढ़े-लिखे समझदार व्यक्ति भी धन और परिचय के अभाव में कैसे कैसे हैरान-परेशान होकर रोने-धोने लगते हैं ! यहाँ तक कि साधु संन्यासी भी कई बार धन और परिचय के अभाव में अपनी बड़ी दयनीय दशा को दर्शा रहे होते हैं । अब जब पढ़े-लिखे समझदार और प्रबुद्ध व्यक्ति जो हर प्रकार से शरीर से भी समर्थ हैं और जिनकी बात भी दूसरे भली भांति- समझ सकते हैं, जो चाहें तो किसी का सामान इधर से उधर उठा कर भी चार आठ आने वा रुपया - दो रुपया लेकर चार फुलके खा सकते हैं वा महनत-मजदूरी करके अपने स्थान पर पहुँच सकते हैं, वा दो चार जगह गण्यमान व्यक्तियों को अपनी स्थिति समझा-बुझा कर उनसे कुछ लेकर अपने तन की भूख

मिटा सकने हैं, अपनी प्यास बुझा सकते हैं, अपने घर पहुँच सकते हैं। पर हमें उस नन्हे बालक के बारे में सोचना चाहिये कि जो अभी ही संसार में आया है-जिसका कि यहाँ कोई अभी परिचित नहीं है, जिस की कि जेब में कोई रुपया-पैसा होने की बात तो दूर रही, अभी तो उस की कोई जेब ही नहीं है। जो कि अभी नंगा ही संसार में आया है। फिर जो सब प्रकार से अशक्त भी है–असमर्थ भी है। फिर उस की तो कोई बात भी नहीं समझ सकता है, और न ही वह स्वयं किसी की कुछ बात समझ सकता है। फिर जो न स्वयं चल-फिर सकता है, न ही स्वयं खा-कमा सकता है, न ही स्वयं बोल-चाल सकता है, न ही स्वयं उठ-बैठ सकता है, न ही स्वयं कुछ सोच-विचार सकता है, न ही स्वयं कुछ पहिन-ओढ़ सकता है, न ही स्वयं किसी से बात-चीत कर अपने अभिप्राय को समझा सकता है इत्यादि……। उस बालक का क्या हाल होगा यह विचारणीय है।

ऐसी स्थिति में फंसा हुआ वह बालक रोता हुआ भगवान् को मानो यह कह रहा होता है कि—"हे प्रभो ! तू ने मुझे कहाँ भेज दिया, तू ने मुझे कहाँ पटक दिया ? भगवन् ! ऐसी जगह, जहाँ कि मेरा कोई भी जान-पहिचान का व्यक्ति नहीं है। फिर मुझे तू ने यहाँ नंगा ही भेज दिया है, कोई कपड़ा-लत्ता भी मुझे साथ नहीं दिया, कुछ खाने-पीने को भी साथ में नहीं दिया, कुछ धन-धान्य भी साथ नहीं दिया। मुश्किल तो यहाँ यह है कि तू ने मुझे इतना अशक्त–इतना असमर्थ कर के भेज दिया है कि मैं यहां कहीं स्वयं जा-आ भी नहीं सकता, चल-फिर भी नहीं सकता, कुछ

काम-काज भी यहाँ नहीं कर सकता, कहीं बैठ-उठ भी नहीं सकता। और तो और मैं अपनी इस दयनीय स्थिति पर भली-भान्ति सोच-विचार कर उस का हल भी तो नहीं निकाल सकता। गजब तो यह है कि यहां ऐसे लोगों में तू ने मुझे भेज दिया है कि न तो मैं इनकी बोली को समझ सकता हूँ और न ही इन में से कोई मेरी बोली को समझ सकता है……। प्रभुवर ! यहाँ कौन मुझे खिलायेगा-पिलायेगा, कौन मुझे वस्त्र पहना-ओढ़ा कर सर्दी-गर्मी से बचायेगा, कौन मुझे पढ़ायेगा-लिखायेगा, कौन मेरे दुःख-दर्द को, कष्ट-कलेश को मिटायेगा ? आदि-आदि।" यह सब कहता हुआ वह बालक प्रायः रोता रहता है……।

ऐसे रोते हुए बालक को मानो परम पिता परमात्मा सान्त्वना प्रदान करता हुआ यह कहता है—

हे बालक ! तू रो नहीं, तू घबरा नहीं, तू चिन्ता न कर, तू फिकर न कर, तू हैरान-परेशान न हो, क्योंकि तुझ को इस संसार में भेजने से पूर्व मैं ने तेरी माँ को भेजा है। फिर हे प्यारे बेटा ! मैं ने तुम्हारे लिये केवल इस एक माँ को—केवल इस एक माता को ही नहीं भेजा है, वरन् अनेकों माताओं को भेजा है। मैं ने तेरे लिये इस जन्म देने वाली माँ को भेजा है, [तेरे जन्म देने वाले पिता को भेजा है], तेरे लिये दूध देने वाली गौ-माता को भेजा है, पृथिवी माता को भेजा है, श्रद्धा माता को भेजा है, और पावमानी वरदा वेदमाता को भेजा है……। प्रिय बेटा ! ये सभी

माताएं तुम्हें क्रमशः 1जन्म देने वाली, 2दुग्धामृत पिलाने वाली, 3तुम्हारा खान-पान आदि से पालन-पोषण करने वाली, 5तेरे जीवन को शिक्षित-सुशिक्षित कर के अलंकृत करने वाली और 4अपनी गोद में इस माँ के तुल्य बिठा कर तुझे परम पिता परमेश्वर के प्यार और अःशीर्वाद का पात्र बनाने वाली हैं।

यद्यपि वेद में अनेकों माताओं का वर्णन है और सब का अपने-अपने ढंग से मानव के पूर्ण निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान है, परन्तु तो भी उन सब का वर्णन करना यहाँ हमारा उद्देश्य नहीं है। यहाँ तो केवल "वरदा वेदमाता" का वर्णन करना ही हमारा लक्ष्य है, तो भी प्रसंगवश इन माताओं का थोड़ा सा संकेत कर दिया है।

तो इस प्रकार भगवान् कहता है कि—'हे बालक ! तू रो मत, तू घबरा मत, तू व्यर्थ हैरान-परेशान मत हो। क्योंकि जिस संसार में मैं ने तुझ को भेजा है, उस में तुझ से पूर्व मैं ने तुम्हारी इस जन्म देने वाली माँ को भेजा है। यह माँ ऐसी है कि संसार में तुम्हारी बोली कोई और समझे या न समझे, पर यह माँ तुम्हारी बोली को—तुम्हारे अभिप्राय को अवश्य समझेगी। इस में भी कोई

---

१ अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु सम्मनाः ॥ अथर्व० ३-३०-३ ॥

२ माता वसूनां———······॥

३ माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः ॥ अथर्व० १२-१ ॥

४ श्रद्धा माता मनुः कविः ॥ साम० ॥

५ स्तुता मया वरदा वेदमाता ॥ अथर्व १९-७१-१ ॥

सन्देह नहीं कि तू सब प्रकार से अशक्त है, असमर्थ है, पर तुझे इतना अवश्य ज्ञान होना चाहिये कि जिन हाथों में तुझे सौंपा गया है, वे बड़े सशक्त और बड़े समर्थ हाथ हैं जिस माँ की झोली में मैंने तुझे डाला है वह माँ बड़ी सशक्त है, बड़ी समर्थ है। हे बालक! यह माँ अपने से भी बढ़ कर तेरा ध्यान रखेगी। इस माँ को अपनी भूख-प्यास से भी बढ़ कर तेरी भूख-प्यास की चिन्ता होगी, इस माँ को अपनी नींद की अपेक्षा भी तेरी सुख-शान्ति की नींद का अधिक विचार रहेगा। इसे स्वयं मक्खी-मच्छर-खटमल आदि जब परेशान करेंगे तो यह सम्भवतः इतनी दौड़-धूप नहीं करेगी, पर अगर तुझे मक्खी-मच्छर-खटमल आदि हैरान-परेशान करेंगे तो फिर यह चैन से सो नहीं सकेगी; तब तो यह झट दौड़-धूप करके कुछ ऐसा तेल वा आडोमास आदि तुझे लगायेगी वा मच्छरदानी आदि लगायेगी कि जिस से पुनः ये मक्खी-मच्छर आदि तुझे परेशान न कर सकें, तेरी सुख शान्ति की नींद को ये खराब न कर सकें। अर्थात् तू तब आराम की नींद सो सकेगा।

यही तेरी माँ आरम्भ-आरम्भ में तुझे अपनी गोदी में लिटा-लिटा कर जहाँ अपने स्तनों से प्रवाहित होने वाले दुग्धामृत से तुझे तृप्त–परितृप्त करेगी–जहाँ तुझे पुष्ट-परिपुष्ट करेगी, वहाँ तुझे कुछ बड़ा हो जाने पर अर्थात् तेरी जाठराग्नि के कुछ उद्बुद्ध हो जाने पर यह इस गौ-माता आदि का सहयोग लेकर तुझे इनके दुग्ध-दधि-नवनीत-घृत-पनीर आदि से और भी अधिक मस्तिष्क से प्रबुद्ध और शरीर से पुष्ट-परिपुष्ट कर देगी। पुनः जाठराग्नि के और भी अधिक प्रबल हो जाने पर यह धरती माता का–यह भूमि

माता का सहयोग लेकर तुझे नाना प्रकार के गोधूम-गेहूँ-चने-चावल शाक-फल आदि खाद्य पदार्थों से एवं जल रस आदि पेय पदार्थों से पुष्ट-परिपुष्ट एवं तृप्त-परितृप्त करने का प्रयास करेगी। यह माँ तुझे इन सुन्दर-सुन्दर गौ-माताओं का दर्शन करायेगी, धरती माता के हरे-भरे खेतों का दर्शन करायेगी, उस पर बहिने वाली सरित-सरिताओं का, ताल-तलैय्यों का दर्शन करायेगी, यह तुझे इस धरती माँ के सुन्दर-सुन्दर हरे-भरे पर्वतों का दर्शन करायेगी, बर्फीले पर्वतों का दर्शन करायेगी, इस के सुन्दर-सुन्दर पक्षियों एवं हरिण आदि पशुओं का दर्शन करायेगी। यही माता पावमानी "वरदा वेदमाता" के स्वाध्याय मनन-चिन्तन आदि से तुझे शिक्षित प्रशिक्षित कर के, तुझे ज्ञानी-विद्वान् बनाकर जहाँ इस लोक में तुझे मान-सम्मान का, स्नेह-सहानुभूति आदि का पात्र बनायेगी वहाँ तुझे इस श्रद्धा माता की गोद में बिठाकर मुझ प्रभु के अनुपम प्यार और आशीर्वाद का भी पात्र बनायेगी।

इस प्रकार संसार में आए हुए, इस रोते हुए बालक को मानो भगवान् सान्त्वना देते हुए यह बतलाता है कि—"हे भोले मानव! तू जरा आँख खोल कर तो देख कि यह जो मैं ने तुझे 'माँ' दी है वह संसार की कितनी बड़ी अद्‌भुत् देवता है। यह ऐसी है कि तेरी भाषा समझ सकेगी, तेरी बोली समझ सकेगी, तेरे रोने का अभिप्राय भांप सकेगी। यह तेरी भूख-प्यास को अनुभव कर सकेगी। यह तेरी पीड़ा को अपनी पीड़ा से बढ़कर अनुभव कर सकेगी। यह तेरी आपत्ति-विपत्ति को अपनी आपत्ति-विपत्ति से

बढ़कर समझेगी और उस को दूर करने का जी-जान से प्रयास करेगी। यह तेरी सुख-सुविधाओं को अपनी सुख-सुविधाओं से बढ़कर महत्व देगी·········।''

सचमुच यह मां बड़ी अद्भुत देवता है। यह अपने बालक के लिये कितना त्याग करती है, कितना तप करती है, कितना जप करती है, कितना सोचती है, कितना विचारती है, कितनी दौड़-धूप करती है ? यहां तक कि यह अपने इस बालक के निर्माण में कभी- कभी इतनी खोई हुई सी रहती है कि इस को अपनी भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी आदि का भी नहीं अनुभव होता। बस सोते-जागते, बाहर जाते और भीतर आते हुए सदा इस के हृदय में अपना बालक ही तब रम रहा होता है।

इस में कोई सन्देह नहीं कि यह जन्म देने वाली माँ अपने इस बालक के लिये इतना कुछ करती है कि उसे शब्दों में वर्णन नहीं किया जा सकता है। परन्तु भगवान् कहता है कि—"हे मानव ! इस माता से–इस माँ से बढ़ कर भी एक माता है–एक माँ है जिस का नाम है—पावमानी–[1]"वरदा वेदमाता"। बेटा !

---

१ यों तो वेद में जन्म देने वाली माँ को माता, भूमि को माता श्रद्धा को माता और वेद को भी माता कहा गया है, इस में अपने ढंग का एक बड़ा भारी रहस्य है जिस को पढ़–सुन कर सोच-विचार कर मनुष्य बहुत उन्नति की ओर अग्रसर हो सकता है। पर यहाँ प्रकरण से मैं कहीं अति दूर न चला जाऊँ, अतः इन माताओं का केवल सङ्केत मात्र कर दिया है शेष फिर कभी इन सब के सम्बन्ध में विचार करेंगे।

यह जन्म देने वाली, पालन-पोषण करने वाली माता जैसे मैं ने तुझे प्रदान की है, वैसे ही मैं ने तुझे यह अद्वितीय पावमानी-"वरदा वेदमाता" भी प्रदान की है, जो तेरा पूर्णतया निर्माण करने वाली है ।

वेद के शब्दों में भगवान् कहता है-"स्तुता मया वरदा वेदमाता"-हे बालक ! तेरे वास्तविक निर्माण के लिये मेरे द्वारा "वरदा वेदमाता" को प्रस्तुत किया गया है वा जिस वरदा वेद-माता को मेरे द्वारा प्रस्तुत किया गया है उसी "वरदा वेदमाता" की मेरे द्वारा स्तुति-प्रशंसा भी की गई है । तात्पर्य यह है कि जिस "वरदा वेदमाता" को मैं ने तुम्हारे निर्माण के लिये इस संसार में प्रस्तुत किया है वह "वरदा वेदमाता" अत्यन्त स्तुत्य है-प्रशंसनीय है ।

वेद के इस मन्त्र से हमें यह भी शिक्षा मिलती है कि हम अपने बालक के सम्मुख कभी उस की माँ की निन्दा न करें, भर्त्सना न करें, और न ही माँ अपने बालक के सामने कभी उस के पिता की निन्दा करे वा अपमान आदि करे । क्योंकि ऐसे व्यवहार का उस कोमल बालक के हृदय पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है । जैसे एक घर में जब यह माता बच्चे को मारती है तो वह रोता हुआ अपने पिता के पास चला जाता है, और कहता है कि "पिता जी मुझे माँ जी मारती हैं ।" पिता झट उस बच्चे को गोद में ले लेता है और कहता है-"बेटा ! तेरी माँ बड़ी खराब है, यह तुझे मारती है । अतः तू इस के पास मत जा

इत्यादि···।" ऐसे ही जब उसे पिता मारता है और वह रोता-करलाता हुआ अपनी माँ के पास जाता है तो झट माँ उस के आँसू पोंछती हुई, उस को गोदी में बिठा लेती है और उस के पिता को कोसती हुई अपने उस बालक को कहती है कि "तेरे पिता जी बड़े खराब हैं, तुझे वे मारते हैं। अतः तू उन के पास कभी मत जाया कर इत्यादि ··।" कहती हुई उस के मुख सिर को पुचकरती है, यह भी एक व्यवहार है, परन्तु यह अच्छा व्यवहार नहीं है। इस का बच्चे पर, बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। हाँ इस के स्थान पर यदि मन्त्र के अनुसार यह निम्नलिखित व्यवहार किया जायेगा तो उस का बालक पर बहुत उत्तम प्रभाव पड़ेगा। हाँ वह व्यवहार यह है कि जब किसी कारणवश माँ बच्चे को मारती है और वह बच्चा रोता-रोता अपने पिता के समीप आता हुआ यह कहता है या वह पिता ही रोते हुए उस बालक के समीप जाता हुआ उसको प्यार से अपनी गोदी मे लेता हुआ यह पूछता है कि-"बेटा ! क्या बात है तू क्यों रो रहा है?" यह सुन कर वह रोता हुआ बालक अपने पिता को कहता है कि-"पिता जी ! माँ जी ने मुझे मारा है वह बड़ी खराब है···।" इस पर वह पिता उत्तर देता है कि-"बेटा ! तेरी माँ तो बहुत अच्छी हैं, वह तुझे मार नहीं सकती क्योंकि वह तो तुझे बड़ा स्नेह करती है, वह तुझे प्रति दिन नहलाती धुलाती है, अच्छे से अच्छे वस्त्र पहनाती है, कंगी करती है, तुझे सुर्मा डालती है, अच्छे से अच्छे पदार्थ बड़े प्यार से बना-बना कर तुझे खिलाती है, अच्छे से अच्छे पेय बना-बना कर तुझे पिलाती है। अब बेटा ! जो माँ तुझे इतना प्यार

करती है, वह तुझे प्रथम तो मार नहीं सकती, पर अगर उस ने तुझे मारा भी होगा तो तभी मारा होगा जबकि तूने कुछ शरारत की होगी, कुछ उल्टा काम किया होगा।" बच्चा स्वभाव से बड़ा सरल होता है, अतः वह झट बोल देता है कि–"हाँ पिता जी, मैं ने यह किया था, वह किया था तो फिर माँ जी ने मुझे मारा।" इस पर पिता बेटे से बोला–"बेटा ! तो फिर ऐसा उल्टा काम करने पर तो माँ जी ने तुझे मारना ही था⋯।" यदि तू भविष्य में ऐसी शरारत नहीं करेगा तो बेटा फिर तुझे तेरी माँ जी कभी भी नहीं मारेगी। वह तो फिर सदा तुझे प्यार ही देती रहेगी, दुलार ही देती रहेगी⋯।" पिता की इस बात पर नारी को जहाँ सन्तोष रहेगा वहाँ बेटे के भावी जीवन पर भी इस का बड़ा ही उत्तम प्रभाव पड़ेगा। अतः गृहस्थ में एक दम्पती को ऐसा ही करना चाहिए।

तो मैं कह रहा था कि वह परम पिता परमेश्वर कहता है कि—"हे मनुष्यो ! "मया [1]वरदा वेदमाता स्तुता [प्रस्तुता]"

---

१ इस मन्त्र का देवता है गायत्री और ऋषि है ब्रह्मा। कई महानुभाव इस मन्त्र का देवता 'गायत्री' देख कर–इस मन्त्र का (Subject matter) प्रतिपाद्य विषय 'गायत्री' देख कर यह समझने लगते हैं कि "प्रसिद्ध जो गायत्री छन्द वाला सावित्री देवताक मन्त्र है, वही प्रसिद्ध गायत्री-मन्त्र, गुरु-मन्त्र ही इस का प्रतिपाद्य विषय है। [illegible]

मैं ने वरदान देने वाली वेदमाता को आप के लिये प्रथम ही प्रस्तुत कर दिया है। और मैं उस दिव्य माता की प्रशंसा भी करता हूँ। इसलिये कि वह हर दृष्टि से स्तुत्य है–प्रशंसनीय है। अतः तुम सब मनुष्यों का कर्त्तव्य है कि तुम इस की शरण में

वाला मन्त्र ही इस उपर्युक्त मन्त्र का प्रतिपाद्य विषय होता तो इस मन्त्र में उस का कुछ तो जिक्र होता। पर मन्त्र पर विचार करने पर ऐसा कुछ पता नहीं लगता। फिर यदि यही गायत्री छन्द वाला मन्त्र इस का देवता हो तो फिर सभी गायत्री छन्द वाले मन्त्र इसके देवता हुए। परन्तु ऐसा है नहीं। अतः प्रसिद्ध गायत्री इस उपर्युक्त मन्त्र का देवता–विषय न हो कर इस का विषय वास्तव में वह गायत्री माँ है, जो "जगदम्बा" माँ है, जो सदा अपना "गायतं त्रायत इति गायत्री" गुण गान करने वालों की सदा रक्षा करती रहती है। वह भी उस की, जो केवल उस के गुणों का गान ही नहीं करता वरन् उन गुणों के आधार पर जी-जान से आचरण भी करता है। इस प्रकार यहाँ गायत्री का अर्थ हुआ–"सच्चे-सुच्चे उपासक की रक्षक जगज्जननी माँ।"

ब्रह्मा–इस मन्त्र का ऋषि है–साक्षात् करता है। अर्थात् इस मन्त्र का साक्षात्कार कर जिसने अभ्युदय–निःश्रेयस को पा लिया हो, वह ब्रह्मा है।

आओ ! अर्थात् प्रतिदिन इस का स्वाध्याय करो, प्रतिदिन इस का मनन-चिन्तन और निदिध्यासन करो।

कई महानुभाव इस मन्त्र का देवता "गायत्री" देख कर इस मन्त्रगत 'वेदमाता' पद में षष्ठी तत्पुरुष समास "वेदस्य माता—वेदमाता" मान कर प्रसिद्ध गायत्री मन्त्र को ही यहाँ इस 'वेद' की माता समझते मानते और कहते हैं। परन्तु उन का यह कहना ठीक नहीं प्रतीत होता। हाँ यदि यहाँ षष्ठी तत्पुरुष समास ही माना जाय तो 'वेदस्य माता—वेदमाता' यह प्रसिद्ध गायत्री छन्द वाली ऋचा इसकी देवता नहीं होगी वरन् "वेदस्य माता—वेदमाता" वेद की माता–वेद की जननी-उत्पादिका गायत्री-उपासक की रक्षा करने वाली परमैश्वर्ययुक्त अद्वितीय महांशक्ति परमात्मा ही होगी।

परन्तु वास्तव में जब इस मन्त्र पर गहराई से विचार किया जाय तो यह "वेदमाता" पद में षष्ठी तत्पुरुष समास नहीं वरन् कर्मधारय समास ही अधिक संगत प्रतीत होता है। उस अवस्था में 'वेदमाता' का अर्थ होगा "वेदश्चासौ माता इति वेदमाता" जो वेद है–वेद वाणी है, वही हमारी माता है। या जो हमारी माता है वह वेद ही है–वेदवाणी ही है। अर्थात् जो वेद है–वेद वाणी है, वही हमारी सच्ची माता है–वही वास्तव में हमारा पूर्णतया निर्माण करने वाली है। अथवा यों भी कहा जा सकता है कि—"जो हमारी माता है–वास्तव में हमारा बस

प्रकार से निर्माण करने में समर्थ है, वह वेद ही है–वह वेद वाणी ही है।

तो इस प्रकार भगवान् कहते हैं—"हे मनुष्यो ! मैं ने तुम्हारे सुख और कल्याण के लिये–अभ्युदय और निःश्रेयस के लिये–लौकिक सुख-सौभाग्य और परम सौभाग्य-परम आनन्द के लिये--"वरदा वेदमाता" को–ज्ञान की अनुपम स्रोत सर्वविध निर्माण करने वाली वेद माता को प्रस्तुत कर दिया है। यह माता कैसी है? 'वरदा'—"वरं वरं ददातीति वरदा" यह बड़े बड़े वरदान देने वाली है, बड़े-बड़े वरणीय ज्ञान-विज्ञान को प्रदान करने वाली है, बड़े-बड़े कला-कौशलों को सिखाने वाली है, सुन्दर-सुन्दर नीति-सुनीतियों का बोध कराने वाली है। यह 'वरदा वेदमाता' हमें भली-भान्ति बैठना-उठना, चलना-फिरना, रहना-सहना, पहनना-ओढ़ना, बोलना-चालना, खाना-पीना, देना-लेना, हँसना-गाना, लिखना-पढ़ना, स्नेह-सौहार्द, प्रेम-प्यार पूर्ण व्यवहार करना आदि सिखाती है। यह हमें जीवन में कुछ सोचना-विचारना और आगे बढ़कर कुछ करना-कराना सिखाती है इत्यादि।

हे मनुष्यो ! यह -वरदा वेदमाता' बड़ी ही विलक्षण माता है-बड़ी ही अद्भुत् माँ है–बड़ी ही निराली माँ है, बड़ी ही स्नेह ओर प्यार की वर्षा करने वाली माँ है। अतः जब भी आप सब

महानुभाव इस माँ की शरण में जायेंगे, इस का आप श्रद्धा-भक्ति से स्वाध्याय करेंगे, मनन-चिन्तन करेंगे तो यह आप को बड़े-बड़े वरदान ही देगी। हे मनुष्यो ! यह जन्म देने वाली माँ तो जीवन में ऐसा भी दुर्भाग्य पूर्ण समय आ सकता है कि क्रोध में आकर आप को गाली भी दे दे, पर यह वेद माता तो सदा तुम्हें वरदान ही देगी। जैसे कि मैं (स्वयं लेखक) एक बार किसी बहिन के निमन्त्रण पर उस के यहाँ गया। मैं बैठक में बैठा हुआ तब कुछ स्वाध्याय आदि कर रहा था जब कि वह भोजन बनाने के लिये आटा गून्द रही थी। इतने में एक बच्चा उस के सम्मुख गया होगा तो सम्भवतः उसे कुछ तंग भी किया होगा–परेशान भी किया होगा, तभी तो उस ने सहसा क्रोध में आकर उस बच्चे को परे धकेलते हुए यह कहा कि—"जा मर परे हट मेरी आँखों के सामने से······।" यह सुनकर मुझ [लेखक] से नहीं रहा गया तो मैं ने धीरे से वहीं बैठे-बैठे ही उन से कहा—"बहिन जी ! क्या यह आप दिल से कह रही हैं ?" इस पर बहिन जी ने अत्यन्त सकुचाते हुए यह कहा कि "भाई साहब ! मैं दिल से तो ऐसा नहीं कहती।" यह सुन कर मैं बहुत हँसा और मैं ने उस पूज्य बहिन जी से कहा—"बहिन जी ! जब आप दिल से ऐसा नहीं कहतीं तो मुख से ही फिर आप ऐसा क्यों कह रही हैं···?" यह सुन कर वह बोली—"भाई साहब ! क्रोध में आकर मनुष्य का विवेक ऐसा खो जाता है कि फिर उसे यह पता नहीं लग पाता कि वह क्या बोल रहा है।

तो इस प्रकार यह माँ तो कभी क्रोध में आकर–गुस्से में आकर ऐसे वचन भी बोल सकती है जो कि यह हृदय से नहीं बोलना चाह रही होती। अर्थात् यह माँ जब कभी क्रोध में आती है तो इस की जहाँ आकृति बिगड़ जाती है वहाँ इस की प्रकृति–स्वभाव भी बिगड़ जाता है। जहाँ इस की प्रकृति [स्वभाव] बिगड़ जाता है वहाँ इस की प्रवृत्ति व्यवहार भी बिगड़ जाता है। इस क्रोध के कारण इस की प्रवृत्ति के बिगड़ने पर वा इस की शकल और अकल के बिगड़ जाने पर फिर यह माँ दिल से जो बोलना चाहती है, वह बोल नहीं पाती और जो दिल से नहीं बोलना चाहती है, वह बोल जाती है। फिर माँ दिल से जो अभिशाप देना नहीं चाहती वह अभिशाप भी दे जाती है। फिर इस के मुख से वरदान तो निकल ही नहीं पाता, तब तो यह वरदा न रहकर अवरदा ही हो जाती है। परन्तु यह 'वेदमाता' तो ऐसी है जो सदा 'वरदा' ही बनी रहती है, सदा वरदान देने वाली ही बनी रहती है। और फिर इस के वरदान इतने सुन्दर होते हैं जो मनुष्य को जहाँ अच्छी प्रकार से संसार में खड़ा कर देते हैं, जहाँ संसार में सब के स्नेह-सम्मान का पात्र बना कर रख देते हैं, वहाँ ये वरदान उसे उस प्रभु के अनुपम प्यार और आशीर्वाद का पात्र भी बना देते हैं। भगवान् ने तभी तो कहा है कि–"हे मानव ! जहाँ मैं ने तेरे पालन-पोषण के लिये इस माँ को भेजा है वहाँ तेरा सम्यक् प्रकार से निर्माण करने के लिये इस 'वरदा वेदमाता'

को भी प्रस्तुत किया है। यदि तुम प्रतिदिन इस "वरदा वेदमाता" की–इस वरदान देने वाली परम कल्याणकारिणी अनुपम माँ की शरण में श्रद्धा पूर्वक जाते रहोगे, अर्थात् इस का बड़े प्रेम और उत्साह से स्वाध्याय मनन चिन्तन और निदिध्यासन आदि करते रहोगे तो फिर यह अनुपम 'वरदा वेदमाता' तुम्हें 'कैसे बोलना चाहिये, कब बोलना चाहिये, कितना बोलना चाहिये, कहाँ बोलना चाहिये, क्यों बोलना चाहिये; कैसे सोना चाहिये, कब सोना चाहिये, कितना सोना चाहिये, कहाँ सोना चाहिये, क्यों सोना चाहिये; कैसे जागना चाहिये, कब जागना चाहिये, कितना जागना चाहिये, कहाँ जागना चाहिये, क्यों जागना चाहिये; कैसे बैठना चाहिये, कब बैठना चाहिये, कितना बैठना चाहिये, कहाँ बैठना चाहिये, क्यों बैठना चाहिये; कैसे खाना चाहिये, कब खाना चाहिये, कितना खाना चाहिये, कहाँ खाना चाहिये, क्यों खाना चाहिये; कैसे [दुग्ध-रस-जल आदि] पीना चाहिये, कब पीना चाहिये, कितना पीना चाहिये, कहाँ पीना चाहिये, क्यों पीना चाहिये; कैसे खिलाना चाहिये, कब खिलाना चाहिये, कितना खिलाना चाहिये, कहाँ खिलाना चाहिये, क्यों खिलाना चाहिये; कैसे रहना चाहिये, कब रहना चाहिये, कितना रहना चाहिये, कहाँ रहना चाहिये, क्यों रहना चाहिये; कैसे चलना चाहिये, कब चलना चाहिये, कितना चलना चाहिये,, कहाँ चलना चाहिये, क्यों चलना चाहिये; कैसे पढ़ना चाहिये, कब पढ़ना चाहिये, कितना पढ़ना चाहिये, कहां

पढ़ना चाहिये, क्यों पढ़ना चाहिये; कैसे लिखना चाहिये, कब लिखना चाहिये, कितना लिखना चाहिये, कहां लिखना चाहिये, क्यों लिखना चाहिये; कैसे ब्रह्मचारी–विद्यार्थी–छात्र बनना चाहिये, कब बनना चाहिये, कितना बनना चाहिये, कहाँ बनना चाहिये, क्यों बनना चाहिये; कैसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र बनना चाहिये, कब बनना चाहिये, कितना बनना चाहिये, कहाँ बनना चाहिये, क्यों बनना चाहिये; कैसे गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यस्थ बनना चाहिये, कब बनना चाहिये, कितना बनना चाहिये, कहाँ बनना चाहिये, क्यों बनना चाहिये; कैसे माता-पिता बनना चाहिये, कब बनना चाहिये, कितना बनना चाहिये, कहाँ बनना चाहिये, क्यों बनना चाहिये; कैसे अध्यापक-प्राध्यापक, -आचार्य–प्राचार्य–उपकुलपति–कुलपति, उपदेशक, उपनेता–नेता, मन्त्री वा राजा आदि बनना चाहिये, कब बनना चाहिये, कितना बनना चाहिये, कहाँ बनना चाहिये, क्यों बनना चाहिये। इसी प्रकार एक स्त्री, पति, पुत्र, पुत्री, माता-पिता, भगिनी–भ्राता, स्वामी–सेवक, मालिक–मजदूर, पुरोहित–यजमान, वक्ता–श्रोता, नेता–जनता, राजा–प्रजा, दाता-गृहीता, उत्पादक–उपभोक्ता, प्रधान–उपप्रधान, मन्त्री–उपमन्त्री, वैद्य–हकीम–डाक्टर, शिल्पी, कहार, कुम्भकार, स्वर्णकार, साधक–उपासक आदि-आदि को कैसा होना चाहिये, कब होना चाहिये, कितना होना चाहिये, कहां बनना चाहिये, क्यों बनना चाहिये; यह सब बातें हमें बड़े सुन्दर ढंग से यह "वरदा वेदमाता" सिखाती है। इस "वरदा वेदमाता"

क्या है, यह तो इतनी अद्वितीय माँ है कि इस के सम्बन्ध में स्वयं वेद कहता है कि—"पावमानी-द्विजातां"—"द्विजानां पावमानी।" अर्थात् यह माँ द्विजों को पवित्र करने वाली है। यद्यपि यहाँ वेद वाणी के सम्बन्ध में—"वरदा वेदमाता" के सम्बन्ध वेद में बहुत सुन्दर बात कही गई हैं। परन्तु सम्भवतः यही एक शब्द ही ऐसा है कि जिस के कारण बड़ी भारी भ्रान्ति फैली है। वह यह कि जब कुछ ब्राह्मणों ने-विद्वानों ने वेद में यह शब्द देखा कि-"द्विजानां पावमानी"—यह वेदवाणी द्विजों को पवित्र करने वाली है, तो फिर उन्होंने यहाँ मनुस्मृति के अनुसार द्विजों से त्रैवर्णिकों-ब्राह्मण-क्षत्रिय और वैश्यों को ही समझा। अतः उन्होंने यह घोषणा कर दी कि वेद को पढ़ने-पढ़ाने का अधिकार केवल इन ब्राह्मणों-क्षत्रियों और वैश्यों को ही है। क्योंकि यह वेद वाणी इन तीनों को ही पवित्र करती है। इतना ही नहीं इस से और आगे बढ़ कर "द्विजानाम्" शब्द चूंकि पुल्लिंग में है, अतः यह वेदमाता त्रैवर्णिकों–ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्यों में से भी केवल जो पुरुष वर्ग है, उसे ही पवित्र करती है, स्त्री वर्ग को नहीं, ऐसा समझा। ऐसे ही विचारों से जब मध्यकालीन विद्वानों के मन बुद्धि-चित्त आदि सदा ओत-प्रोत रहने लगे तो तब फिर आगे चल कर उन विद्वानों ने स्त्री-शूद्र को इस 'वरदा वेदमाता' के स्वाध्याय का भी अधिकारी नहीं समझा। फिर उन्होंने "स्त्री-शूद्रौ नाधीयातामिति श्रुत्तौ" यह घोषणा ही कर डाली। वे केवल इतने कठोर ही नहीं बने कि—'स्त्री-शूद्र' को वेद के पढ़ने का अधिकार नहीं है वरन् आगे

चल कर वे इतने क्रूर बने कि उन्होंने यहाँ तक भी लिख डाला और सर्वत्र प्रचार कर डाला कि—"यदि स्त्री-शूद्र कहीं इस वेद वाणी को सुनें तो उन के कानों में रांगा पिघला कर डाल देना चाहिये, यदि वे इस को पढ़ें वा इस का उच्चारण करें तो उन की आँखें फोड़ दी जाएं, उन की जिह्वा काट ली जाय आदि-आदि.........,"

ऐसे निर्दयी ब्राह्मण-विद्वान् तो आगे चल कर ऐसे हो गए कि पग-पग पर इन सेवापरायण स्त्री और शूद्र वर्ग से वे अत्यन्त घृणा और द्वेष का व्यवहार करने लगे। ऐसे दुर्व्यवहार में पढ़ कर उन की अपनी भी विवेक की आँखें ऐसे फूट गयीं कि फिर वे स्वयं भी वेद के नामधारी पुजारी तो बने रहे पर उस का स्वाध्याय करने से विरत हो गए। इसी का परिणाम है कि फिर वे ठीक व्यवस्था देने में भी असमर्थ हो गये।

वे लोग इतने निर्दयी हो गये कि इतना भी नहीं सोच सके कि जब इस का नाम 'वरदा वेदमाता' है तो फिर भला यह माँ कहलाकर क्यों किसी अपने बालक-बालिका के निर्माण में कोताई कर सकेगी, फिर इस को प्रस्तुत करने वाला हम सब का परम पिता परमेश्वर है जो सब प्राणियों पर समान रूप से अपनी न्याय-व्यवस्थानुसार कृपा करता है, तो फिर भला वह प्रभु इतना पक्ष-पात कैसे कर सकता है। इस का तो नाम ही 'वेदमाता' है फिर यहाँ यह स्वयं स्त्रीलिंग है, तो फिर भला यह स्वयं स्त्रीलिंग में

होकर, उस पर भी माता–'वेदमाता' होकर कैसे इन स्त्रियों पर यह अत्याचार कर सकेगी–अर्थात् इन को अपने स्वाध्याय से–श्रवण मनन-चिन्तन और निदिध्यासन से वञ्चित रख सकेगी। और फिर यह सब का कल्याण करने वाली माँ भला इन सेवापरायण शूद्रों के प्रति–सच्चे सेवापरायण मानवों के प्रति भी भला इतनी कठोर कैसे हो सकती है। इसलिये परम पिता परमेश्वर की व्यवस्था से इस 'वरदा वेदमाता' का द्वार सदा सब मानवों के लिये समान रूप से खुला हुआ हैं। उस प्यारी और सब माताओं से न्यारी पावमानी 'वरदा वेदमाता' की झोली में सभी मानव समान रूप से बैठने के अधिकारी हैं, और वह प्यारी माँ त्यागवश जब भी–जैसे भी–जो भी उपदेश इन सब को दे उस को समान रूप से सब को सीखने सुनने-सुनाने का अधिकार है, ऐसे जैसे कि धरती माता पर रहने, सूर्य चन्द्र के प्रकाश को प्राप्त करने, सरित-सरिताओं के जल का पान करने और इस प्राणवायु आदि के सेवन करने का सब को अधिकार है।

यद्यपि पर्याप्त समय वेदों का द्वार इन सामान्य स्त्री–शूद्रों के लिये ही केवल बन्द नहीं रहा वरन् कर्म से अद्वितीय महान् क्षत्रिय शिरोमणि शिवाजी आदि महापुरुषों के लिये भी यह द्वार बन्द रहा। तभी तो करोड़ों रुपये खर्च करने पर भी उस महापुरुष का उपनयन वेदमन्त्रों से नहीं किया गया इत्यादि। धन्य हैं १९वीं शताब्दी के अद्वितीय महापुरुष महर्षि दयानन्द जिन्होंने सहस्त्रों

ग्रन्थों का स्वाध्याय किया, वेद के अगाध समुद्र में भी जी भर कर अवगाहन किया। इस से उन की आँखें खुल गयीं। और तब उन्होंने संसार के सम्मुख यजुर्वेद अध्याय २६ मन्त्र २ का यह प्रमाण प्रस्तुत करते हुए कहा कि "इस मन्त्र में परमेश्वर स्वयं कहता है कि—

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः। ब्रह्मराजन्या-
भ्याँ शूद्राय चार्य्याय च स्वाय चारणाय ॥

(यथा जनेभ्यः इमां कल्याणीं वाचम् आवदानि) जैसे मैं सब मनुष्यों के लिये इस कल्याण अर्थात् संसार और मुक्ति के सुख देनेहारी वाणी का उपदेश करता हूँ; वैसे ही तुम भी किया करो।" यहाँ कोई ऐसा प्रश्न करे कि "जनेभ्यः" शब्द से द्विजों का ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि स्मृत्यादि ग्रन्थों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ही के वेदों में पढ़ने का अधिकार लिखा है; स्त्री और शूद्र आदि वर्णों का नहीं। तो इस का उत्तर स्वयं परमेश्वर देता है कि (ब्रह्मराजन्यभयाम्) हम ने समान रूप से ब्राह्मण, क्षत्रिय, (अर्य्याय) वैश्य (शूद्राय) शूद्र और (स्वाय) अपने भृत्य वा स्त्री आदि (अरणाय) अति शूद्र आदि के लिये भी वेदों का प्रकाश किया है। (सत्यार्थ प्रकाश)।

इस अत्यन्त स्पष्ट प्रमाण को देख कर कोई भी बुद्धिमान्, विद्वान् भूल कर भी यह नहीं कह सकता—यह घोषणा नहीं कर सकता कि "वेद के पढ़ने का अधिकार स्त्री—शूद्र को नहीं है।"

सभी सच्चे-सुच्चे महापुरुषों को इस भगवती श्रुति के इस अत्यन्त स्पष्ट प्रमाण के सम्मुख नतमस्तक हो कर ऋषिवर दयानन्द सम यह कहना पड़ेगा–यह घोषणा करनी पड़ेगी कि 'कल्याणी वेद-वाणी का सन्देश उपदेश और निर्देश सभी मानवों के लिये समान रूप से ऐसे ही है जैसे कि यह प्राणवायु का प्रवाह सब के लिये समान रूप से है। चाहे कोई स्त्रो हो वा पुरुष, चाहे कोई ब्राह्मण हो वा क्षत्रिय, चाहे कोई वैश्य हो वा शूद्र वा अतिशूद्र हो, चाहे कोई ब्रह्मचारी हो वा गृहस्थ, वानप्रस्थ हो वा संन्यस्थ, सब के सब इस वेदवाणी को पढ़ सकते हैं, सुन सकते हैं। वेदमाता स्वयं सारी मानव जाति को अमर परमात्मा के पुत्र मानती है और उन सब के लिये यह अधिकार घोषित करती है कि वे सब उस को सुनें—"श्रृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्राः" ॥ (ऋ० १०–१३–१)

इस से यह स्पष्ट हुआ कि वेद किसी वर्ण विशेष का वा आश्रम विशेष का वा वर्ग विशेष का वा देश विशेष का धर्मग्रन्थ न हो कर सारी की सारी मानव जाति का धर्मग्रन्थ है। अतः इस के पढ़ने-पढ़ाने और सुनने-सुनाने तथा सोचने-विचारने और तद-नुकूल आचरण करने-कराने और उस से निरन्तर जीवन में ऊंचा उठने और आगे बढ़ने का सब को समान रूप से अधिकार है।

केवल इन प्रमाणों को देख कर ही यहाँ यह नहीं समझा जा रहा है कि वेदमाता का उपदेश सब के लिये है, वरन् उस का स्वयं स्वाध्याय कर के भी यह लिखा जा रहा है कि यह वेदवाणी

सब के लिये है, वह चाहे स्त्री हो वा पुरुष, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य हो वा शूद्र, इस देश का हो वा परदेश का इत्यादि । यदि ऐसा न होता तो वेद में अनेकों ऐसे शब्द, अनेकों ऐसे वाक्य, अनेकों ऐसे मन्त्र एवं अनेकों मन्त्रों में निहित उत्तमोत्तम उपदेश इस नारी जाति को क्यों दिये गये होते ? और फिर नारी के लिये अनेकों ऐसे शब्द एवं विशेषण यथा कन्या गृहिणी, जाया, पत्नी, देवी, पृथुष्टुका, स्योना, सूनृता, आश्रुति, विश्रुति, निवेशनी, सरस्वती, स्मितानना, सम्राज्ञी, दुहिता, स्वसा, भगिनी, गर्भिणी, वधू, सूर्या, युवती, जनी, स्त्री, नारी, आपः, सुहवा, मनोरमा, हव्या, शिवा, शग्मा आदि क्यों दिये गये होते ? फिर ये सब शब्द इस बात के प्रमाण हैं कि वेद को पढ़ने-पढ़ाने और सुनने-सुनाने का अधिकार नारी को भी है। ऐसे ही कन्या को ब्रह्मचर्य काल में अन्य सभी विद्याओं के साथ-साथ धार्मिक कृत्य-ब्रह्मयज्ञ–सन्ध्या, देवयज्ञ–अग्निहोत्र आदि करने की शिक्षा दी गई है । "यज्ञं दधे सरस्वती" ऋग्वेद १-३-११ ॥ ज्ञान से सम्पन्न नारी यज्ञ कर्म को–उत्तम कर्म को जीवन में धारण करती है वा 'नारी यज्ञ कर्म को–ब्रह्मयज्ञ, देव यज्ञ आदि को सदा किया करे।' एक अन्य स्थल पर कन्या को चरित्र सम्बन्धी शिक्षा देने के साथ-साथ यज्ञ कर्मों में ब्रह्मा बनने की भी शिक्षा दी गई है—स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ ॥ ऋ० (८-३३-१६) [1]अथर्व वेद में दो युवतियों की बुनाई की शिक्षा की उपमा

१ तन्त्रमेके युवती विरूपे अभ्याक्रामं वयतः षण्मयूखम् ॥
अथर्व १०-७-४२ ॥

से सृष्टिक्रम को समझाया गया है। इस से कन्याओं की कताई-बुनाई सिद्ध होती है। [1]अथर्ववेद में पिता को जहाँ कन्या पर कठोर नियन्त्रण रखने का निर्देश किया गया है वहाँ उस के इतस्ततः वृथा घूमने आदि का निषेध भी किया गया है। अथर्ववेद काण्ड ३ सूक्त २८ मन्त्र १ के अनुसार कन्या को "यमिनी विजायते"— अर्थात् यमनियमों का पालन करने वाली होकर द्विजन्मा बनती है और इस प्रकार आदर्श ब्रह्मचर्य के आदर्श को पूरा करती है, ऐसा कहा गया है।

ऐसे ही "ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्। (अथर्व० ११-५-६) में कन्या के सम्बन्ध में कहा गया है कि वह पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन कर अर्थात् पूर्ण युवती बन कर युवा पति को प्राप्त होती है। "सूर्यां यत्पत्ये शंसन्तीं मनसा सविता ददात् ।।ऋग्वेद १०-८५-९ ।। अथर्व १४-२-५२ के अनुसार पति की दिल से कामना करने वाली कन्या ही पितृलोक से पतिलोक की ओर जाती है। अथर्व २-३०-५ में "एयमगन् पतिकामा" यह वधू पति की कामना वाली बन कर यहाँ पतिकुल में आई है। अथर्व १४-२-६ में "धेहि सर्ववीरं वचस्यम्" में नव वधू को पुत्रों से युक्त होने का आशीर्वाद दिया गया है। ऋग्वेद १०-२६-१२ में "स्वयं सा मित्रं वनुते जने चित्।" अर्थात् वह स्वयं अपने लिये योग्य वर को

---

१ अथर्व १-१-८२ ।।

चुनती है। ऐसे अनेकों वचनों से ज्ञात होता है कि वेद केवल पुरुषों के लिये ही नहीं वरन् स्त्रियों के लिये भी है। और लीजिये एक वेद मन्त्र में एक नारी आने भाव अभिव्यक्त करती हुई कहती है—

अहं केतुरहं मूर्धाहमुग्रा विवाचनी ।
ममेदनु क्रतुं पतिः सेहानाया उपाचरेत् ।।
ऋ० १०-१५९-२ ।।

(अहं केतुः) मैं ज्ञानवती हूँ (अवं मूर्धा) मैं घर में मुख्य हूँ (अहम् उग्रा विवाचनी) मैं तेजस्विनी, वक्तृत्व कला से युक्त हूँ। अतः (सेहानाया मम इत क्रतुम्–अनु पतिः उपाचरेत्) शत्रुओं का दमन करने वाली मुझ नारी के सत्कर्मों के अनुसार पति भी आचरण करे- व्यवहार करे।

मम पुत्राः शत्रुहणोऽथो मे दुहिता विराट् ।
उताहमस्मि सञ्जया पत्यौ मे श्लोक उत्तमः ॥
ऋ० १०-१५९-३ ॥

मेरा पुत्र शत्रु का नाश करने वाले हो, मेरी पुत्री अत्यन्त तेजस्विनी हो और (उत अहं संजया अस्मि) मैं भी सदा जयशील हूँ। अतः (पत्यौ मे उत्तमः श्लोकः) मेरे पतिदेव के हृदय में मेरी उत्तम कीर्ति–यश विराजमान हो इत्यादि———।

अब यदि स्त्री को वेद में अधिकार न हो तो फिर यह उत्तम विचार, ये उत्तम आकांक्षायें किस के हृदय में विराजमान होंगी। इन्हीं सब प्रसंगों से यह ज्ञात होता है कि स्त्री के लिये भी वेद के पढ़ने-पढ़ाने, सुनने-सुनाने का समान रूप से अधिकार होगा।

फिर भी अगर मध्यकालीन विद्वानों का कथन स्वीकार कर यह कह दिया जाए कि वेदों का ज्ञान नारी के लिये नहीं है तो फिर इस निम्न मन्त्र का उपदेश भला किस के लिये है ?

अधः पश्यस्व मोपरि सन्तरां पादकौ हर। मा ते कशप्लकौ दृशन् स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ।। ऋ० ८-३३-१९।।

हे नारि ! नीचे देख, ऊपर न देख (सन्तरां पादकौ हर) गम्भीरता से पाँव रख कर चल। (ते कशप्लकौ मा दृशन्) तेरे अवयव [स्तन] किसी को दिखाई न पड़ें। क्योंकि (स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ) ऐसी जो स्त्री होती है वास्तव में वही महान् बन सकती है।

स्त्री को चाहिये कि वह पुरुष की तरह ऊपर न देखे प्रत्युत नीचे की ओर ही अपनी दृष्टि रखे। वह चले तो सदा गम्भीर गति से चले, जोर-जोर की जूतों की ध्वनि करती हुई– जूतों की आवाज करती हुई न चले। उस के अङ्ग-प्रत्यङ्ग भली-भान्ति वस्त्रों से आच्छादित हों। अर्थात् वह अपने अंगों का प्रदर्शन कभी न करे। इस प्रकार के आचरणों से नारी महान् बनती है, पूजनीय बनती है। वेद के ऐसे [illegible] में स्पष्ट

हो जाता है कि वेदाध्ययन का अधिकार पुरुष के साथ-साथ नारी को भी है ।

ऐसे ही जो शूद्र हैं, जो सेवापरायण हैं, वे भी गृहस्थ होते हैं, उनमें भी पुत्र होते हैं, पुत्रियाँ होती हैं, भाई होते हैं, बहनें होती हैं, पति होते हैं, पत्नियाँ होती हैं, पिता होते हैं, माताएं होती हैं। अब यदि उन को वेदवाणी का–वेदमाता का–वेदज्ञान का सदुपदेश सुनने का अवसर नहीं दिया जायेगा, उन को वेद का स्वाध्याय करने का मौका नहीं दिया जायेगा, तो फिर भला वे कैसे अपने घर-परिवारों को वेदानुसार सुन्दर-सुखमय और सुव्यवस्थित बना सकेंगे ? मैंने (लेखक ने) स्वयं एक बार एक आर्यसमाज में व्याख्यान दिया तो वहाँ का सेवक आकर मुझ से बोला–"महाराज ! आज आप ने ऐसी बातें बतायी हैं जो कि सबकी सब मेरे घर में हो रही हैं। मुझे तो आप के उपदेश से एक बार ऐसा लगा जैसे कि आपने हमारे घर के सब हालात देखे हुए हों। और फिर जो आपने इस विषय में वेद के अनुसार परिवार में सब मनुष्यों को परस्पर कैसा वर्तना चाहिये, यह सब बताया तो मुझे बड़ी प्रेरणा मिली इत्यादि।" अब यदि शूद्र को–सेवापरायण इस सेवक को वेदोपदेश के श्रवण से वा वेद के स्वाध्याय से वञ्चित रखा जायेगा तो फिर भला उस बेचारे को अपने कर्तव्य कर्मों का सम्यक् बोध कैसे हो सकेगा । ?

इस के अतिरिक्त "पावमानी द्विजानाम्"–इस मन्त्रांश में जिस "द्विज" शब्द को देखकर मध्यकालीन ब्राह्मण विद्वानों ने

यह सोच लिया-यह विचार लिया कि "वेद माता—यह वेदवाणी केवल द्विजों को ही पवित्र करने वाली है।" तो वास्तव में उन्होंने ठीक नहीं विचारा, क्योंकि उन्होंने "द्विज" शब्द का अर्थ ही ठीक प्रकार से नहीं समझा। 'द्विज' शब्द का, वास्तविक अर्थ होता है "द्विर्जायते इति द्विजः"—जो दो बार जन्मे—जो दो बार उत्पन्न हो— जो दो बार पैदा हो वह 'द्विज' कहलाता है। संस्कृत साहित्य में 'द्विज' शब्द का एक अर्थ 'दान्त' होता है। वह भी इसलिये कि दान्त दो बार उत्पन्न होता है। एक बाल्यावस्था में और दूसरी बार आठ-नौ वर्ष की आयु में। ऐसे ही पक्षी को भी "द्विज" कहा जाता है, क्योंकि एक बार वह अण्डे के रूप में बाहर आता है और दूसरी बार वह पक्षी के रूप से अण्डे से बाहर आता है। ठीक इसी प्रकार से ही जो मानव द्विजन्मा होता है, जो दो बार जन्म लेने वाला होता है, वह इस जन्म देने वाली माँ से जन्म पाकर केवल इसी में ही सन्तोष का अनुभव करके कमाने-खाने आदि में नहीं लग जाता, वरन् वह फिर गुरुकुल माता—वेदमाता के गर्भ में जाता है और वहाँ उस के उपदेश-सदुपदेश पढ़ने-सुनने और समझने तथा आचरण में लाने का हार्दिक प्रयास करता है वही सच्चा द्विज कहाता है। उसे ही यह वेदवाणी हर प्रकार से शुद्ध-पवित्र बनाती है। इस के अतिरिक्त जो अपनी इस जन्म देने वाली माँ से जन्म पाकर खाने-कमाने में लग जाते हैं पर कहीं से चेतना पाकर जब ये अपने इस अभाव को आर्यसमाज के सत्संगों में जा-जा कर और वहाँ वेदमाता

के उपदेश-सदुपदेशों को सुन-सुन कर, पढ़-पढ़कर पूर्ण करने का हार्दिक प्रयास करते हैं तो उन्हें भी यह "वरदा वेदमाता" पवित्र करती है। कई महानुभाव ऐसा समझ लेते हैं कि यह "वरदा वेदमाता" केवल जन्मजात द्विजों को पवित्र करती है। अर्थात् जिन्होंने द्विजों-ब्राह्मणों के घर में जन्म पा लिया है, उन्हें ही यह वेदवाणी पवित्र करती है। परन्तु सत्य बात यह है कि ऐसा होता नहीं है। यदि वास्तव में ऐसा होता तो फिर द्विजों के–सच्चे ब्राह्मणों के पुत्र तो केवल उन्हीं के यहाँ जन्म पाने मात्र से ही बड़े पवित्र हो गये होते। मैं (लेखक स्वयं) एक बार वैदिक धर्म का प्रचार करने के लिये एक बड़े नगर में गया। वहाँ आठ दिन तक प्रचार करता रहा, तो एक दिन एक माता जी–अर्थात् एक सुपरिचित ब्राह्मण की अर्धाङ्गिनी आई, जो मेरे और मेरे माता-पिता और घर-परिवार आदि से खूब परिचित थीं। उन्होंने मुझे बड़े स्नेह से कहा—"राम ! तू बड़ा भाग्यशाली है।" मैं ने कहा –"माता जी, कैसे ?" इस पर उन्होंने कहा—"राम ! तू धन्य है कि वैश्य कुल में उत्पन्न होकर भी आज तू वैदिक धर्म का प्रचार कर रहा है और इधर हमारे पतिदेव हैं जो उच्च ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होकर भी न जाने क्या-क्या करते रहे और कर रहे हैं। कहाँ तक गिनाऊँ उन्होंने जीवन में अफीम बेची, चरस बेची, चाय की दुकान की, ताङ्गा चलाकर कोचवान का कार्य किया, जीवन में शराब पी, सिग्रेट-बीड़ी आदि तो सामान्य बातें हैं। और भी न जाने क्या-क्या किया, यह मैं बतला भी नहीं सकती........।"

यह सब कहते हुए उन का हृदय भर आया और आँखों से उन के टप-टप करके आँसू गिरने लगे। ऐसी स्थिति में जहाँ मैं उन्हें धैर्य और सान्त्वना देता रहा वहाँ वे भी कुछ सम्भल कर अपने आंसू पोंछती रहीं। अन्त में वे अपने घर चल दीं और मैं भी अपने अभीष्ट स्थान पर चला आया। मैं तब अपने हृदय में यह सोचता रहा कि—यदि वास्तव में केवल ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होने मात्र से ही यह "वरदा वेदमाता"–यह वेदवाणी किसी को पवित्र करती होती तो फिर उस ब्राह्मण को तो उसे पवित्र करना चाहिये था ही, और हम साधारण क्षत्रिय-वैश्य आदियों को नहीं। पर वास्तव में ऐसा होता नहीं। इसलिये चाहे जो जिस किसी भी वर्ण में उत्पन्न हो जाए पर अगर उस का इधर इस विषय में कोई प्रयास नहीं रहेगा तो फिर यह वेदवाणी–यह "वरदा वेदमाता" उस को पवित्र नहीं कर सकेगी। इसलिये जो पवित्र होना चाहते हैं, उन्हें चाहिये कि वे बड़ी श्रद्धा से वेदमाता की शरण में जाकर उस का श्रद्धा-भक्ति से सतत् स्वाध्याय करें और तदनुसार जी-जान से आचरण करें ताकि यह वेदवाणी उन को पवित्र कर सके।

भगवान् आगे मनुष्यों को उपदेश देता है कि—"मनुष्यों को चाहिये कि इस "वरदा वेदमाता" से जो कुछ भी उन्हें उपदेश मिले, जो कुछ भी उन को ज्ञान मिले, जो कुछ भी उनको शिक्षा मिले, वे जी-जान से उस का प्रचार और प्रसार करें। मुझे स्मरण है कि पौराणिक विचारधारा के कारण हमारी पूज्य माता जी

प्रतिदिन मन्दिर में जाया करती थी। वह सत्संग कथा-वार्ता आदि श्रवण के उपरान्त जो प्रसाद बरफी, बताशे, लड्डू-बून्दी आदि के रूप में उन्हें मिलता था वह उसे बड़ी सावधानी से रूमाल में बान्ध कर घर ले आती थी ताकि उस का एक भी कण कहीं नीचे गिर न जाए। घर आकर वह उस प्रसाद को हम सब में बड़े प्यार से बांटती हुई कहती–"राम ! थोड़ा तू भी प्रसाद ले ले, कृष्ण बेटा ! तू भी प्रसाद ले ले। बेटी ! थोड़ा तू भी ले ले इत्यादि –।" इस प्रकार सब में बाँट कर फिर वह स्वयं भी थोड़ा सा प्रसाद खा लेती थीं। पूज्य माता जी की बात को स्मरण कर के मेरे हृदय में यह विचार आता है कि–"यदि पूज्य माता जी आज जीवित होतीं तो मैं उन से यह पूछता कि–"माँ जी क्या आप को यह ज्ञात है कि कौन सा प्रसाद ऐसा है कि जिस के बाँटने से बाँटने वाले और पाने वाला का कल्याण होता है ? वास्तव में आज माँ जी जीवित होती तो मैं उसे यही कहता कि–"माँ जी ! इस बरफी -पेड़े, लड्डू,-बून्दी बताशे आदि का प्रसाद भले ही आप स्वयं खा लेतीं , इस के बाँटने न बाँटने से कुछ अधिक अन्तर नहीं आता, और अगर आप इसे भीं बाँट कर खाती हैं तो यह सोने पर सुहागा है। पर असली प्रसाद तो वह होता है जो आप सत्संग में विद्वानों से-महापुरुषों से श्रवण करती हैं। आप को चाहिये कि उस उपदेश का–उस ज्ञान का ऐसे ढंग से श्रवण करें कि–ऐसे ढंग से उसे अपनी हृदय रूपी पोटली में डालें कि

एक भी ज्ञान का कण नीचे न गिर जाए। सारा का सारा सुना हुआ ज्ञान प्रसाद तुम्हारे भीतर ही आ जाए। फिर यहाँ आकर आप उस ज्ञान को सरल-सरल उदाहरणों और कहानियों के माध्यम से हम सब अपने बच्चों में बाँट दो ताकि हमारा पूर्ण रूपेण भद्र हो।" वास्तव में वेदमाता के उपदेश के श्रवण से वा वेदवाणी के स्वाध्याय-मनन-चिन्तन आदि से जो प्रसाद हमें मिले उस को हमें केवल अपने तक ही सीमित नहीं रखना चाहिये वरन् अधिक से अधिक लोगों में उसे बाँट कर उस का स्वयं सेवन करना चाहिये। इसी अभिप्राय से यहाँ "प्रचोदयन्ताम्" शब्द आया है। यदि हम सच्चे हृदय से ऐसा करते रहेंगे तो हम को बड़ी तृप्ति मिलेगी, हम को बड़ी प्रसन्नता मिलेगी। वेद का प्रचार और प्रसार भी तब जन-जन में, घर-घर में, ग्राम-ग्राम में, नगर-नगर में और देश-विदेश में सर्वत्र हो जायेगा। इस प्रकार वेद-वाणी के श्रवण और स्वाध्याय से जहाँ हमें स्वयं को लाभ पहुँ-चाना चाहिये वहाँ औरों को भी उस से सब प्रकार से आगे बढ़ाना और ऊँचा उठाना चाहिये।

मनुष्य भगवान् से पूछता है—"हे प्रभुवर! इस "वरदा वेदमाता का हम यदि स्वाध्याय करें–मनन-चिन्तन-निदिध्यासन करें वा इस का ज्ञानी विद्वानों से श्रवण करें तो यह हमें इस संसार में कौन-कौन से वरदान देगी?"

प्रभु कहता है—'मेरे प्यारे बेटा! यह 'वरदा वेदमाता

बड़ी अद्भुत माँ है, जो भी इसकी शरण में आ जायेगा, जो भी इस का श्रद्धा भक्ति से श्रवण-मनन-चिन्तन आदि करेगा, और तदनुसार जी-जान से आचरण करने का हार्दिक प्रयास करेगा तो यह पावमानी–वरदा वेदमाता संसार में सब से बड़ा वरदान उस को लम्बी आयु देगी–उस को सब से पहला वरदान दीर्घायु प्रदान करेगी।" कहने का अभिप्राय यह है कि वेदमाता के आदेशानुसार जो समय पर सोयेगा, समय पर ही प्रातः उठेगा, समय पर ही उषापान शौच दन्तधावन स्नान आदि करेगा, समय पर ही भ्रमण-व्यायाम-प्राणायाम आदि करेगा, समय पर ही ब्रह्मयज्ञ–सन्ध्योपासना,, देवयज्ञ–अग्निहोत्र, पितृयज्ञ, अतिथियज्ञ आदि कर के स्वयं अपने शरीर की स्थिति और अपनी प्रकृति के अनुसार ऋतभुक्, मितभुक् और हितभुक् रहेगा तो निःसन्देह इस से जहाँ उस का स्वास्थ्य ठीक रहेगा, वहाँ उस की बुद्धि सदा शान्त और आत्मा सदा प्रसन्न रहेगी, जिस का कि परिणाम यह होगा कि उस की आयु दीर्घ होगी-उस की आयु लम्बी होगी–उस की उम्र बड़ी होगी। क्योंकि तब इस जन्मदात्री माँ के साथ-साथ इस पावमानी–वरदा वेदमाता का भी आशीर्वाद उस को लगता रहा होगा……।

कई महानुभावों का कहना यह है कि–"बहुत से महानुभाव ऐसे हैं जो वेद का न तो श्रवण करते हैं, न ही स्वाध्याय आदि करते हैं तो भी उन की आयु दीर्घ होती है–उन की उम्र लम्बी होती है। ऐसे व्यक्तियों से हमारा कहना यह है कि–"वे लोग

भले ही वेदवाणी का श्रवण और स्वाध्याय नहीं करते हों परन्तु यह भी तो सम्भव हो सकता है कि वे उन लोगों के जीवनों का अनुकरण करते हों—उन महापुरुषों की दिनचर्या का अनुसरण करते हों जो कि वेदानुगामी हों—वेद की मर्यादाओं का जी-जान से पालन करते हों, तो ऐसी अवस्था में भी उन की दीर्घायु का होना स्वाभाविक है । इस के अतिरिक्त 'आयु' का केवल यह शरीर की आयु-उम्र ही अर्थ नहीं है, वरन् 'आयु' का एक और भी बड़ा ही सुन्दर निर्वचन है-बड़ा ही उत्तम प्रेरणाप्रद अर्थ है । वह यह है- "एति लक्ष्यमनेनेति–आयुः" अर्थात् वास्तव में मानव की सच्ची आयु तो वह कहलाती है जिस में कि मनुष्य अपने जीवनोद्देश्य को प्राप्त करता है या जिस में कि मनुष्य अपने लक्ष्य के प्रति कुछ अग्रसर होता है । शेष आहार निद्रा भय और मैथुन आदि में जो आयु व्यतीत होती है-खाने पीने सोने और मौज मारने में जो उम्र गुजरती है उस को तो मनुष्य की आयु कहा ही नहीं जा सकता । क्योंकि ये सब बातें तो पशुओं में भी हैं । अतः इस आयु को पशु आयु ही माना जाता है । एक बार एक सज्जन ने किसी साधु से पूछा —"महाराज" ! आपकी आयु कितनी है ?" इस पर वह सन्यासी बोला—"यही होगी कुछ पाँच एक वर्ष ।" तब वह व्यक्ति बोला—"महाराज ! आप की आयु तो पैंसठ-सत्तर वर्ष से कम नहीं लगती ।" तब वह साधु बोला —"ठीक है आप का कहना भी, परन्तु वह मेरे शरीर की आयु है, वह मेरे उस सामान्य जीवन की आयु है जिस में कि मैं आहार, निद्रा, भय,

मैथुन आदि के कारण पशुओं से कुछ विशेष नहीं रहा। अर्थात् कहने को तो उस आयु में भी मेरी आकृति मनुष्यों की ही थी परन्तु जीवन मेरा उस में पशुओं के समान खाने-पीने, सोने, बलवानों से डरने और निर्बलों को डराने में तथा संसार की मौज उड़ाने में ही व्यतीत हुआ, अतः मैं उस को पशु आयु ही समझता हूँ। हाँ अब जब मैंने पाँच वर्षों से यह सोचना आरम्भ किया है कि मैं जग में किसलिये आया हूँ, मैं क्या कर रहा हूँ और मुझे वास्तव में क्या करना चाहिये इत्यादि, तो यह सब सोचने समझने और तदनुसार जीवन को अपने लक्ष्य की ओर आगे बढ़ाने में जब से मैं लगा हूँ उसी को ही वास्तव में मैं अपनी मानव आयु मानता हूँ। तभी मैं ने तुम से अपनी आयु पांच वर्ष बताई है।

यह तो हम ने समझ लिया कि जो मनुष्य वेद का स्वाध्याय करता है तदनुसार जी-जान से आचरण करता है तो वेदमाता उस को अपना प्रथम वरदान लम्बी आयु प्रदान करती है। इतना ही नहीं वरन् वह उस को अपने जीवन में जीवन लक्ष्य की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा देती है ताकि वह जीवन में एक सच्चा मनुष्य कहला सके। परन्तु वेद माता उस को दूसरा क्या वरदान देती है ?

प्रभु कहता है—"आयुः प्राणम्" जो वेदवाणी का श्रवण स्वाध्याय आदि करता हुआ तदनुसार आचरण करता है तो वेद माता उसे लम्बी आयु के साथ-साथ प्राणशक्ति भी प्रदान करती

है। अब यदि किसी की लम्बी आयु तो हो, पर उस का स्वास्थ्य अच्छा न हो तो वह दीर्घायु भी बड़ी ही दुःखदायी हो जाती है। पति नारी का सौभाग्य है अतः नारी भी सदा चाहती है कि उस के पति की छत्र-छाया सदा उस के शिर पर बनी रहे और अन्य सब बड़े-बूढ़े महानुभाव भी सदा उस को 'सुहागिन हो' ऐसा आशीर्वाद देते हैं। परन्तु मैं (लेखक) ऐसी दो नारियों को जानता हूँ जो अपने पतियों की दयनीय स्थिति को देखकर, अर्थात् ५-५ वा १०-१० वर्ष की लम्बी-लम्बी बीमारी को देख-देखकर अन्त में तंग आ-आ कर स्वयं भी दबी हुई जबान से यह कहती रहीं— यह प्रार्थना करती रहीं कि—"इस अवस्था से तो अब अच्छा यही है कि ये अब चले ही जायें, ऐसे जीने से तो इनका मरना ही ठीक है।" पर उन विचारों का भी कोई अपना बस थोड़ा है कि अब वे चले ही जाते। तब ये प्रार्थना करती हैं कि "अच्छा प्रभु ही अब इन पर अपनी कृपा करे और इन्हें शीघ्र ही उठा ले आदि-आदि······—।" ऐसे ये दो ही नहीं अनेकों दृश्य संसार में देखने में आते हैं। तो इस से यह ज्ञात होता है केवल किसी की लम्बी आयु–बड़ी उम्र हो जाय वह ही शोभा की बात नहीं है वरन् लम्बी आयु के साथ-साथ मनुष्य प्राण शक्ति से भी सम्पन्न हो, अर्थात् वह पूर्ण स्वस्थ भी हो तो शोभा की बात है। उस के सभी शारीरिक अवयव काम करते रहें तभी उस लम्बी आयु का महत्व है। यदि ऐसा नहीं होता तो वह लम्बी आयु भी सुख का नहीं वरन् दुःख का कारण बन ही जाती है। अतः प्रभु कहता है कि–"जो वेदमाता का

श्रवण मनन आदि कर के तदनुसार आचरण करेगा उस को ही वेदमाता प्राणशक्ति-शारीरिक बल भी प्रदान करेगी। इस प्रकार वेदमाता के इस दूसरे वरदान को पाकर मनुष्य का और भी अधिक उत्थान होगा। अर्थात् वह लम्बी आयु तक जहाँ अपने कर्मों को स्वयं सहज रूप से कर सकेगा वहाँ वह दूसरों के प्रति भी अपने उत्तरदायित्वों का भली-भान्ति पालन कर सकेगा।

इसी प्रकार यदि हम वेदमाता की शरण में नित्यप्रति श्रद्धा-भक्ति से जाते रहेंगे, उस का श्रवण–मनन–चिन्तन आदि श्रद्धा पूर्वक करते रहेंगे तो तीसरा वरदान-तीसरा प्रसाद हमें इस वरदा वेदमाता का मिलेगा—"प्रजा"–प्रकृष्ट संस्कारों वाली ान–उत्तम संस्कारों वाली सन्तान, अर्थात् अच्छी सन्तान। ा का संसार प्रायः अपना सबसे बड़ा सौभाग्य समझता है ा-वैभव को, कार-कोठी को, नौकर-चाकर को, जमीन-जायदाद को, बड़े पदों और बड़ी प्रतिष्ठा को। इसलिये वह नित्यप्रति इसे ही भगवान् से चाहता रहता है, और इसी के लिये ही सदा प्रभु से प्रार्थना–अभ्यर्थना करता रहता है। परन्तु वेदमाता का कहना यह है कि सब से बड़ा वरदान–सब से बड़ा प्रसाद –सब से बड़ा सौभाग्य है आयु–दीर्घायु। क्योंकि वह धन-वैभव आदि सब कुछ हुआ पर अगर यह मानव ही न हुआ, अर्थात् यह मानव ही शीघ्र संसार से चल बसा तो फिर पञ्जाबी कहावत है कि "आप मुआ जग परलो" अर्थात् जब मनुष्य स्वयं ही मर लिया, जब वह स्वयं ही नहीं रहा तो फिर उस के लिये यह सब कुछ हुआ-हुआ भी नहीं

हुआ के समान है । क्योंकि उस के लिये मानो फिर जग में ही ही प्रलय आ गया। अतः सब से बढ़ कर सौभाग्य का चिन्ह तो लम्बी आयु है। यही कारण है कि जब वधू को "सौभाग्यवती भव देवि !" का आशीर्वाद दिया जाता है तो उस का अभिप्राय धन से नहीं होता वा होता भी है तो गौण रूप से होता है, पर प्रधान रूप से उस का अभिप्राय होता है कि उस के पति की आयु लम्बी हो, और उसी की सुखद छत्र-छाया में सुदीर्घ काल तक उस का जीवन सुख पूर्वक व्यतीत हो। दूसरा सौभाग्य होता है "प्राणम्"–प्राण शक्ति । अर्थात् लम्बी आयु के साथ-साथ मनुष्य शरीर से सशक्त हो। तीसरा सौभाग्य है मनुष्य का प्रजा–अच्छी सन्तान। धन-वैभव घर में कितना भी क्यों न हो जाय पर अगर मनुष्य की सन्तान अच्छी नहीं है तो भी मनुष्य का दुर्भाग्य है। धन-वैभव भी वेदमाता देती है, पर उस का नम्बर बहुत बाद में है–उस का स्थान बहुत पीछे है।

अब यह प्रजा–प्रकृष्ट संस्कारों वाली सन्तान–वह अच्छी सन्तान कैसे प्राप्त होती है। अच्छी सन्तान–उत्तम संस्कारों वाली सन्तान मानव को तब मिलती है जबकि ये दम्पती–जबकि ये वर-वधू–जबकि ये पति-पत्नी प्रतिदिन वेदमाता की शरण में जाते हैं, इस को पढ़ते-पढ़ाते और सुनते-सुनाते हैं। इस वेदमाता के पढ़ने-सुनने से इन दोनों के विचार उत्तम बनते हैं । इन के विचार अच्छे होने से इन के आहार और व्यवहार उत्तम बनते

हैं। इस के परिणामस्वरूप इन के हृदयों में प्रभु से उत्तमोत्तम प्रार्थनाएं होने लगती हैं। जैसे नारी प्रभु से वेद में प्रार्थना करती है—"मम पुत्रः शत्रुहणो अथो मे दुहिता विराट्" हे प्रभो ! मुझे यदि पुत्र दो तो वह ऐसा हो कि जो शत्रुओं का हनन करने वाला हो, पुत्री दो तो वह ऐसी हो कि जो विराट् हो। अर्थात् अगर मुझे पुत्र दो, और वह ब्राह्मण (वृत्ति का) हो तो ऐसा हो कि काम क्रोध लोभ मोह अहङ्कार ईर्ष्या द्वेष आदि शत्रुओं को पैरों तले रौन्द कर वैदिक धर्म का प्रचार करने वाला हो, अगर वह क्षत्रिय हो तो मैदाने जंग में शत्रुओं के दान्त खट्टे कर देने वाला हो—अरिदल का विनाश कर देने वाला हो; अगर वह वैश्य हो तो आटे में नमक के तुल्य लाभ–मुनाफा लेकर सात्विक भोजन आ-च्छादन में तृप्त रह कर संसार को उत्तमोत्तम पदार्थों की सप्लाई करने वाला हो, और अगर वह शूद्र हो—सेवापरायण हो तो निर-भिमान हो कर तीनों वर्णों की जी-जान से सेवा कर के उन का संरक्षण, प्यार और आशीर्वाद प्राप्त करने वाला हो। यदि मुझे पुत्री मिले तो वह ऐसी विदुषी और तेजस्विनी हो कि जैसे दुपहर के काल का सूर्य, ताकि यदि कोई दुष्ट आदमी आँख उठा कर उस को बुरी दृष्टि से निहारे–देखे तो उस की आँखें चुन्धिया जाएँ……।

दोनों मिलकर प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि "प्रभुवर ! स्यान्नः सूनुः" हमारे घर में 'सूनु' उत्पन्न हो, हमारे घर में 'सूनु' पैदा हो

अर्थात् हमारे घर-परिवार में ऐसी सन्तान उत्पन्न हो जो अपने उत्तम कर्मों से स्थान-स्थान पर स्नेह-सम्मान का, श्रद्धा और प्यार का, यश और कीर्ति का पात्र बने। इतना ही नहीं वह सन्तान ऐसी हो जिसके द्वारा स्थान-स्थान पर हम माता-पिताओं को यश मिले। फिर इतना ही नहीं वरन् वह सच्चा आस्तिक भी हो, अर्थात् तुझ जगत् विधाता प्रभु का कृतज्ञ होकर सदा गुण-गान करने वाला भी हो, भजन-पूजन करने वाला भी हो। वह 'तनय' हो, अर्थात् अपने कुल का विस्तार करने वाला भी हो, उसको आगे बढ़ाने और ऊपर उठाने वाला भी हो, इत्यादि। तो इस प्रकार से यदि हम इस वेद का स्वाध्याय करते रहेंगे, तदनुसार अपने विचार–आहार–व्यवहार और आचार को बनाते रहेंगे और सच्चे हृदय से प्रभु से अभ्यर्थना करते रहेंगे तो तब हमारे घर में निसन्देह ऐसी प्रजा उत्पन्न होगी, निसन्देह ऐसी प्रकृष्ट संस्कारों वाली सन्तान पैदा होगी कि जिसको पाकर हम कृतज्ञ होकर जहां उस प्यारे और सब जग से न्यारे प्रभु का धन्यवाद करेंगे वहां हम स्वयं भी सदा बड़े निहाल से रहेंगे। इस के विपरीत यदि सर्व प्रकार के धन-वैभव हमारे पास होंगे पर अगर हमारी सन्तान अच्छी न होगी तो फिर सब धन-वैभव हमारी सन्तान के निर्माण का ही नहीं वरन् उसके विनाश का ही कारण बनेगा। एक पिता की चार सन्तानें थीं, सभी के स्वास्थ्य अच्छे थे, पर विचार अच्छे नहीं थे। क्योंकि उनको संगत अच्छी नहीं मिली। शराब, जुआ आदि व्यसनों के वे शिकार बने हुये थे।

घर में नित्य दुर्जन-दुर्व्यसनियों का आवागमन बना रहता था। उस भयङ्कर स्थिति को देखकर उनका बाप सदा रोता रहता था। एक दिन वह एक विद्वान् के समीप जाकर अपना रोना रोया। उनसे बात चीत करने पर पुनः बहुत कुछ सोचने विचारने पर उसे एक तरकीब सूझी, वह यह कि "अब तो धन भी खराब हो रहा है और मेरे लड़के भी। अगर मैं धन को किसी अच्छी जगह लगा दूं तो इस से जहाँ धन का दुरुपयोग होना बन्द हो जायेगा वहाँ यह सन्तान भी बुराईयों से बचकर रात-दिन दौड़ धूप कर जब पुरुषार्थ से धन कमायेगी तो तब वह ऐसे बुरे कार्यों से बच जायेगी ?" यह सोचकर उसने एक बहुत बड़ी सभा की और उसमें अपनी सबसे बड़ी कोठी को एक स्कूल के लिये दान कर दिया और कहा कि मेरे यहां तो इस धन-वैभव का दुरुपयोग हो रहा है, अतः मैं इस कोठी के नए दान की जहां घोषणा करता हूँ, वहां बहुत जल्दी ही मैं इसके चलाने के लिये एक बहुत बड़ी धन राशि की घोषणा भी करूंगा ·······।" बेटों को जब यह ज्ञात हुआ तो वे अपने पिता के पैरों में पड़ने लगे और गिड़-गिड़ाते हुये यह कहने लगे कि–"पिता जी ! हम सब ने आगे से कान पकड़े, फिर कभी ऐसे कार्य हम नहीं करेंगे इत्यादि।" तो मैं कह रहा था, यदि सन्तान अच्छी हो तो थोड़ा धन–वैभव भी बड़ा ही सुखदायी होता है, पर अगर सन्तान बुरी हो तो बहुत बड़ा धन–माल भी मनुष्य को फिर सुखी नहीं कर सकता। अतः हर दम्पती को चाहिये, हर पति-पत्नी को चाहिये कि वे वेद माता का स्वाध्याय करें, उससे अपने

विचार और आचार को ऊंचा उठायें, अपने आहार-व्यवहार को श्रेष्ठ बनाएं ताकि उनकी संतान प्रजा बनें, प्रकृष्ट संस्कारों वाली बने। अर्थात इस प्रकार वे वेदमाता के तृतीय वरदान को भी प्राप्त करें।

वेद माता के स्वाध्याय और तदनुसार आचरण का चौथा फल है–चौथा वरदान है, "पशुम्" घर में दूध देने वाले पशु, अर्थात् वे पशु जिनके परिणाम स्वरूप घर में दूध, दही, घृत की नदियां बहती रहें। मैं लेखक स्वयं पंजाब में एक स्थान पर गया, वहां एक आदर्श परिवार है जिसमें कि मैंने १० दिन तक यजुर्वेद पारायण यज्ञ कराया। उनके यहां काफी लंबा चौड़ा सम्मिलित परिवार है। घर में ढ़ाई-तीन मन दूध होता है। घर में दूध, दही, मक्खन,पनीर, घृत का सदा बाहुल्य रहता है। उनका कहना यह है कि "हमारे पिता जी वेदों का नित्य प्रति स्वाध्याय किया करते थे, और वे सदा यह कहा करते थे कि "बेटा वेद का आदेश यह है कि घर में इतना दूध, घृत आदि होना चाहिए कि जैसे पेड़ को पानी दिया जाता है ऐसे घर के सब व्यक्तियों को दूध-दही आदि से सींचा जा सके, तर-बतर किया जा सके···।" उन्हीं के सदुपदेशों का--उन्हीं के नित्य प्रति के इन कथनों का परिणाम है कि हमारे यहाँ इतने पशु हैं और इतना दूध है तथा दही घी आदि है।

सचमुच जो वेद माता का नित्य स्वाध्याय करते हैं उन्हें वेदमाता उत्तम विचारों में ओत-प्रोत करती है और तदनुसार

पुरुषार्थ करने और वैसा ही बनने की भी प्रेरणा देती है, जिसका परिणाम यह होता है कि घर में दूध देने वाले पशु भी खूब होते हैं, और घर में दूध-दही-घृत आदि का सदा प्रवाह प्रवाहित होता रहता है । तो इस प्रकार दूध देने वाले पशु और उससे प्राप्त होने वाले दूध, दही और नवनीत, पनीर, घृत आदि घर–परिवार को वेदमाता की ओर से मिलने वाला चौथा वरदान है ।

पांचवाँ वरदान है वेदमाता का 'कीर्ति' । जो व्यक्ति प्रतिदिन वरदा वेदमाता की शरण में जायेगा, वह उसके पढ़ने सुनने से उत्तमोत्तम ज्ञान-विज्ञान, शिक्षा-सुशिक्षा, उपदेश-सदुपदेश को पायेगा तो इससे उसके विचार पवित्र होंगे, आचार पवित्र होंगे, आहार पवित्र होंगे, व्यवहार पवित्र होंगे । अर्थात् वेदमाता की कृपा से तब उसे श्रवण से कानों में और पढ़ने से नेत्रों द्वारा उत्तम विचारों के जाने से उसका मन पवित्र होगा। मन के पवित्र होने से उस के नेत्रों से सब ओर स्निग्धता, पवित्रता प्रवाहित होगी, उसकी वाणी से तब पवित्र अमृतमय वचन झरेंगे, पैर सदा फिर उसके उत्तमोत्तम स्थानों की ओर जाने के लिये सदा अग्रसर होंगे, हाथों से तब उसके पवित्र उत्तमोत्तम शुभ कार्य व्यवहार और उपकार होने लगेंगे । आयु तब उस के उत्तम खान-पान और आचरणों से लम्बी होगी, प्राण-शक्ति तब उसकी सशक्त होगी । सन्तान तब उसकी दिव्य होगी, माता-पिता की आज्ञाकारिणी होगी । घर में दुग्ध, घृत आदि की तब नदियां बहेंगी, तो फिर भला यह कैसे हो सकता है कि उसको

कीर्ति न मिले, चारों ओर से यश न मिले।

सचमुच जो मनुष्य सच्चे हृदय से सदा शुभ ही शुभ सोचता रहता है, शुभ ही शुभ सदा करने का यत्न करता रहता है, समय आने पर उसे सर्वत्र यश मिलता रहता है, उसकी कीर्ति पताका सर्वत्र लहराने लगती है। वह तब हर दिल अजीज बन जाता है, तब हर दिल को प्यारा लगने लगता है। हर एक तब उसको देखने में अपनी आंखों से तृप्ति अनुभव करने लगता है, हर एक तब उस से बात-चीत करने में सुख अनुभव करने लगता है, हर एक तब उसको सुनने में मुग्ध होने लगता है, हर एक तब उसको अपने यहां जल-पान, भोजन आदि कराने में अपना अहोभाग्य समझने लगता है, हर एक तब उसको अपने घर-परिवार में ठहराने में अपना सौभाग्य अनुभव करने लगता है, हर एक तब उनके पास अपने जीवन के कुछ क्षण-पल-घण्टे-दिवस-मास-वर्ष बिताने में अपने जीवन की सार्थकता समझने लगता है, हर एक तब उनके साथ बैठ-उठ कर, खा-पीकर, रह-सह कर, चल-फिर कर, घूम-फिर कर, शिक्षा और अनुभव प्राप्त कर गर्व अनुभव करने लगता है–अपने जीवन की सार्थकता अनुभव करने लगता है।

वेद माता के केवल आयु, प्राण, प्रजा, पशु और कीर्ति ही वरदान नहीं हैं वरन् जो इस 'वरदा वेद मां' का जी जान से सम्मान करता है, इससे उपदेश-सदुपदेश, ज्ञान-विज्ञान, कला-कौशल शिक्षा-सुशिक्षा स्वच्छता और पवित्रता को ग्रहण करता है तो उस मानव

को यह 'द्रविणम्-[धनं च बलं च-निरुक्त] धन-बल से भी सम्पन्न कर देती है। अर्थात् ऐसे व्यक्ति की झोली तब यह धन-वैभव से भी भर देती है। फिर न तो उसके घर में कभी अन्न-शाक-फलों की कमी रहती है, न ही कभी दूध, दही, घी आदि का अभाव रहता है, न ही कभी वस्त्र आच्छादन आदि का अभाव रहता है, न ही कभी जमीन-जायदाद की कमी रहती है, न ही कभी कार-कोठी का अभाव रहता है, न ही कभी फिर उस व्यक्ति के घर-परिवार में कोई अतिथि भूखा–प्यासा रहता है, और न ही कोई घर-परिवार स्वयं भूखा-प्यासा आदि रहता है।

इन सब प्रकार की सुख-सुविधाओं के कारण इस प्रकार के सुख-सौभाग्यों के कारण जब सब समय पर उठते-बैठते, व्यायाम प्राणायाम आदि करते कराते और उत्तमोत्तम आहार अन्न, शाक, फल, दुग्ध, घृत आदि का सेवन करते रहते हैं तो तब सहज ही उन सब परिवार वालों का बल भी बढ़ता है। केवल शारीरिक बल ही नहीं बढ़ता वरन् तब उनके सूक्ष्म शरीर का बल भी बढ़ता है। अर्थात् तब उनके सशक्त शरीर में सशक्त ज्ञानेन्द्रियां और कर्मेन्द्रियाँ आदि रहती हुई ज्ञान और सत्कर्म को सदा करती हुई उन के मनोबल को बढ़ाने वाली होती हैं।

इतना ही नहीं जब सब वेदमाता के उपदेश-सदुपदेश को श्रद्धा भक्ति से सुनते समझते हैं, उसके अनुसार जी-जान से चलने

का प्रयास करते हैं,और सदा उसके अनुसार जी-जान से चलने के अनुसार संयमी सदाचारी और शुद्ध-पवित्र और दिव्य बने रहने का हार्दिक प्रयास करते हैं, ब्रह्म–वेद का अध्ययन कर, ब्रह्म-वीर्य की हृदय से रक्षा कर जब ब्रह्म-महान् परमेश्वर का श्रद्धा–भक्ति से भजन करते हैं, धन्यवाद करते हैं तो इससे उनको वेदमाता ब्रह्म-वर्चनम्–ब्रह्मतेज भी प्रदान करती हैं। अर्थात् तब वे ऐसे तेजस्वी बन जाते हैं कि उनको देखकर सब का मस्तक उनके सम्मुख झुकने लगता है।

संसार के यह सप्तविध वरदान हैं जिन्हें यह 'वरदा वेद माता' हमें प्रदान करती है। संसार में इन सप्तविध वरदानों से बाहर कुछ और है ही नहीं, अतः जो भी प्रभु के आदेशानुसार इस वेदमाता की शरण में जायेगा, तदनुसार आचरण करेगा, उसे यह सब वरदान प्राप्त होंगे। पर जीव पूछता है कि "क्या प्रभुवर इन सब के मिल जाने पर मुझे (ब्रह्मानन्द-ब्रह्मरस) आनन्द भी मिलेगा ? तो इस का उत्तर प्रभु यह देता है कि—"हे मानव ! इन सप्तविध वरदानों से-इन सप्तविध ऐश्वर्यों से तुम्हें तीन चीजें मिल सकती हैं–सुख, दुःख और मोह" आनन्द इनसे नहीं मिल सकता। क्योंकि जब ये प्राप्त होंगे—तुम्हें मिलेंगे, तो ये तुम्हें सुख देगें, पर जब ये तुम से पृथक होंगे-तुम से वियुक्त होंगे तो तुम्हें दुःख होगा। जैसे सन्तान पुत्र-पुत्री आदि हुई तो सुख होगा, फिर पुत्री का विवाह होने पर तुम्हें पुत्री के वियोग का दुःख

होगा आदि···। फिर इन सब पदार्थों से नित्य प्रति सुख सुविधाओं को पाने पर इनमें तुम्हारा मोह भी बढ़ सकता है आदि आदि। तो इन सातों वरदानों के मिल जाने पर तुम्हें सुख-दुःख-मोह तो मिल सकता है,पर आनन्द नहीं मिल सकता।"इस पर जीव पूछता है—"भगवन ! आनन्द कब मिलेगा, कैसे मिलेगा ? इस पर परमेश्वर जीव को कहता है—

"मह्यं दत्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्" ।

"यह सब जो कुछ भी तुमने अपने पुरुषार्थ और वेदमाता की कृपा से पाया है उसको। मुझे प्रदानकर तुम ब्रह्मलोक-ब्रह्मानन्द की ओर चलो। अर्थात् इस सबको मेरे प्रति समर्पण करके तुम ब्रह्म का साक्षात्कार करो, तुम ब्रह्म का दर्शन पाओ, तुम मेरे प्रति समर्पित होकर ब्रह्मानन्द को पाओ, ब्रह्मानन्द में विभोर हो जाओ" ।

कहने का अर्थ यह है कि जो कुछ हमने पाया है यदि इस सब से हम विरक्त होकर-इस सब से हम ऊपर उठकर-इस सब को जब हम प्रभु के हवाले करके उस का ध्यान करेंगे,जब हम उसके प्रति पूर्णततया समर्पित होकर उसमें धारणा ध्यान आदि द्वारा समाधिस्थ होंगें तो फिर निःसन्देह वह प्राणों से प्यारा और सब जग न्यारा प्रभु हमें अपने अनुपम आनन्द से भी आप्लावित कर देग

हमें अपने दिव्य आनन्द मे भी तर-बतर कर देगा, हमें अपने परम रस से भी तृप्त कर देगा।

पर कठिनाई तो यह है कि यह सब कुछ अपने पुरुषार्थ एवं प्रभु कृपा तथा वरदा वेद माता के आशीर्वाद से पाना तो आसान है,पर पुनः इस को प्रभु को सौंपना बड़ा ही कठिन कार्य है, पुनः इस से विरक्त होना बड़ा ही टेढ़ी खीर है।

जब घर में पुत्र का जन्म होता है तो प्रायः सभी घरों में अपने-अपने ढंग से बाजे बजते हैं, शहनाईयाँ बजती हैं, पर अगर वही बच्चा किसी कारणवश उस परिवार में से उठ जाता है तो फिर उस घर में सब ओर मातम छा जाता है, सभी घर के सदस्यों के तब चेहरे कुम्हला जाते हैं। पर इस जगत् में कुछ भी बुर्लभ नहीं है। ऐसे दिव्य प्राणी भी कभी-कभी इस धरती पर दिखाई दे जाते हैं जो अपने जीवन से अनेकों प्राणियों के लिये सदा-सदा के लिये प्रेरणा के स्रोत बन जाते हैं। पञ्जाब के एक प्रसिद्ध नगर के एक महल्ले में एक बड़ी ही विदुषी बहिन रहती थी। उस के उत्तम गुण कर्म स्वभावों का प्रभाव केवल अपने नन्द-देवर, सास-श्वसुर, पति आदि घर-परिवार के लोगों पर ही नहीं था वरन् सारे गली-मुहल्ले और नगर के गण्यमान् परिवार भी उस से अत्यन्त प्रभावित रहते थे। उस के कारण उस के घर-परिवार ने भी एक बहुत बड़ा मौड़ लिया था। पति तो उससे अत्यन्त

प्रसन्न था। सास-श्वसुर उस को बहु के रूप में पाकर अपने कुल को सदा धन्य-धन्य कहते थे। उम की महानता को उस की नम्रता और सरलता और भी चार चान्द लगा देती थी। कई वर्षों के उपरान्त घर में एक पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई। सभी परिवार के सदस्यों ने खूब खुशियाँ मनाईं, मिठाईयाँ खायी और खिलायीं। बच्चा भी शनैः शनैः चन्द्रचला की तरह बढ़ता हुआ सब को अपनी किलकारियों के द्वारा हर्षित-प्रहर्षित करने लगा। माता-पिता कुछ दिनों के लिये हरिद्वार आदि तीर्थों पर भ्रमण आदि के लिये चले गए। पीछे बच्चा कुछ रुग्ण सा हो गया। पति-पत्नी दोनों बड़े प्यार मे उस की चिकित्सा कराने लगे। बच्चे को कुछ आराम भी आया। पर सहसा एक दिन जब पतिदेव घर आए तो पत्नी ने उनको पानी आदि दिया और बैठने पर कहा "पति देव ! एक बात कहूं" ? पति बोले—"कहो देवी ! क्या बात है" ? इस पर पत्नी बोली कि "पति देव ! ५-६ मास हुये मैंने अपनी पड़ोसन से काम करने के लिये एक कैंची ली थी। वह कैंची जापानी थी अतःबहुत अच्छी कैंची थी। वह मुझे इतनी अच्छी लगी, कि उससे मुझे मोह हो गया। अतः काम करने के उपरान्त मैंने उस को वह कैंची वापिस नहीं दी और स्वयं अपने पास ही वह रख ली। आज जब उस पड़ौसन को उस अपनी कैंची की याद आई तो उसने आकर वह कैंची मुझ से मांगी। पतिदेव उसके मांगने पर भी मैंने उसको आज वह कैंची नहीं दी,

हाँ उस को देने से टलने की कोशिश मैं ने अवश्य की। इस पर उस ने मुझे बुरा-भला भी कहा, पर वह सब बुरा-भला सुनकर भी मुझ से वह कैंची दी नहीं गई। इस पर उस के पति बोले—"देवि ! तू तो इतनी महान् है, तुझे तो ऐसा कभी नहीं करना चाहिये था। प्रथम तो जब उस से काम करने के लिये तू ने कैंची ली थी, तो तुम्हारा कर्तव्य था कि तुम काम करने के बाद तुरन्त ही उसी को वह कैंची दे देती। पर चलो अगर तू तब वह नहीं दे पाई तो अब तो जब वह स्वयं ही उसे माँग रही है तो तब तो तुम्हें वह दे ही देनी चाहिये। देवि ! तेरा इतना यश है, अतः तेरे जैसी नारी में ऐसी बात शोभा नहीं देती। प्रिये ! प्रभु की कृपा रही तो तेरे लिये वैसी ही कभी और कैंची आ जायेगी। पर अब तो तेरा कर्तव्य है कि उस का धन्यवाद करती हुई तू उस को वह कैंची दे आए।" इस पर वह देवी बोली— 'पति देव ! आप का कहना सिर माथे, मुझे ऐसा ही करना चाहिये था।" खैर फिर भी प्रभु कृपा रही तो मैं आप के आदेश का पालन करूंगी। परन्तु किसी वस्तु से जब मोह हो जाता है तो फिर ऐसा करना सरल नहीं होता। पति देव ! आप जरा मेरे साथ इधर आईये।" यह कह कर वह आगे चल पड़ी और पति उस के पीछे चल दिया। आगे चल कर धीरे से उस देवी ने कमरे का कुण्डा खोला और अन्दर चल कर अपने पति से कहा—"पति देव ! हाथ आगे बढ़ाओ !" और धीरे से अपने उस बालक को उस ने उठा कर उन के हाथों पर रख कर कहा—"पति देव ! जिस प्रभू ने यह बालक हमें दिया था, हमें ऐसा सौभाग्य नहीं

मिल सका कि समय आने पर हम इसे स्वयं उस के भरोसे छोड़ कर वानप्रस्थ वा संन्यास की ओर आगे बढ़ जाते और प्रभु से आनन्द पाते। हाँ उस ने पहले ही उसे वापिस मांग लिया है, अतः आप के कथनानुसार जब स्वामी स्वयं ही जब अपनी वस्तु मांग रहा हो तो फिर हमें उस के प्रति मोह न कर के बिना ननु-नच किये हुए धन्यवाद सहित उसे वह वस्तु वापिस कर देनी चाहिये। पति देव ! मेरे पति होकर आँखों से एक भी आँसू बहाए बिना इस बालक को प्रभु को सौंप दो, अर्थात् इस की अन्तिम क्रिया कर दो···।" पति के हाथों पर उस बालक की लाश थी। अतः एक बार उस ने अपनी पत्नी को देखा, फिर बालक को देखा; फिर पत्नी को देखा, फिर बालक को देखा; फिर तीसरी बार फिर जब उसने पत्नी को देखा और इधर पुनः अपने मुद्दतों के बाद हुए-हुए बालक के मृत शरीर को देखा तो उस का दिल थामे नहीं थमा। उस की आँखों से तब आँसुओं की धार बह निकली और वे बोले—"देवि ! जीवन की दौड़ में तू बहुत आगे निकल गई और मैं बहुत ही पीछे रह गया। देवि ! तेरी महानता के प्रति मैं रोम-रोम से नतमस्तक हूँ। देवि ! तू ने आज मुझे इस दिव्य अपने जीवन से इतना ऊंचा पाठ पढ़ाया है जिस को पढ़ने-पढ़ाने वाले संसार में कोई विरले ही मिलते हैं। देवि ! यदि तेरा मुझे जीवन में सुदीर्घ काल तक संग मिलता रहा तो मुझे विश्वास है कि तेरे सम्पर्क से मैं भी कुछ बन सकूंगा। देवि ! तू धन्य है और तेरे को पाकर मैं भी सचमुच धन्य हूँ।" इस के उपरान्त पति ने इधर-उधर सूचना दिलाई और फिर उस बच्चे

की अन्तिम क्रिया आदि की……।

तो मैं कह रहा था कि ऐसे प्राणी धरती में विरले ही होते हैं जो प्रभु से जहाँ लेना जानते हैं वहाँ प्रभु को देना भी जानते हैं। हाँ हमारी तरह सामान्य जन तो उस प्रभु से लेना तो खूब जानते हैं, प्रभु से पाना तो खूब जानते हैं और यह सब कुछ पाने पर फूले भी खूब नहीं समाते। पर जब प्रभु कर्मानुसार जब उन से कुछ वापिस लेता है तो फिर उन के यहाँ हा-हा कार ही मच जाती है, उन के यहां हाय-तोबा ही मच जाती है। इसीलिये ऐसे व्यक्ति कभी उस प्रभु से अनुपम प्यार नहीं पा पाते, उस प्रभु का दिव्य आनन्द नहीं पा पाते।

कहते हैं, एक बार एक राजा प्रातः ४ बजे उठा। राजा के मन में बाहर भ्रमण करने की इच्छा हुई। उस ने अपने सारथि को बुलवाया और कहा कि सारथि! हम बाहर घूमने जाना चाहते है।" सर्दी बहुत अधिक होने पर भी राजा की आज्ञा को शिरोधार्य कर सारथि ने बग्घी तैय्यार की। राजा भी खूब गर्म वस्त्र पहन-ओढ़ कर बग्घी में जा बैठे। सारथि ने घोड़ों को हाँका। देखते ही देखते बग्घी राजमहल से ही नहीं वरन् राजधानी से भी बाहर आ गई। चलते-चलते उस राजा को कहीं एक साधु दिखाई पड़ा जो लंगोट पहने हुए ध्यान में बैठा था। उस के तन पर और कोई भी वस्त्र नहीं था। यह देख कर उस राजा को बड़ी दया आई। उस ने सारथि से कहा—"सारथि! जहाँ वह साधु

बैठा है, वहाँ हमारा यह रथ रोक देना।" सारथि ने वहाँ रथ रोक दिया और नीचे उतरा। राजा भी नीचे उतरा। राजा ने सारथि से कहा—"देखो, सारथि! कितनी ठण्ड है, हम तो इतने वस्त्रों को पहन-ओढ़ कर भी ठण्ड के मारे ठिठुरे जा रहे हैं, तो इस बिचारे साधु का क्या हाल होगा? क्योंकि इस बिचारे के तन पर तो लंगोट के सिवा और कोई वस्त्र है ही नहीं।" इस की झोंपड़ी में राजा ने देखा तो वहाँ एक तुम्बा पड़ा हुआ था और दूसरी ओर एक लंगोट टँगा हुआ था। यह देख कर राजा को बड़ा तरस आया—राजा को बड़ी दया आई। सारथि को राजा ने कहा—"सारथि! घोड़े खोल कर एक ओर खड़े कर दो. हम थोड़ी देर इस साधु के पास बैठेंगे।" साधु ध्यानावस्थित था पर फिर भी राजा से नहीं रहा गया। अतः उन्होंने अपना मूल्यवान् दुशाला उस के कन्धों पर डाल दिया। परन्तु साधु के सीधे बैठे होने के कारण वह दुशाला नीचे गिर पड़ा। तब सारथि ने कहा, "महाराज! आप अभी इन पर यह दुशाला न डालें, क्योंकि इस से इन की साधना में विघ्न पड़ेगा। हाँ जब ये ध्यान आदि कर चुकेंगे तब इन्हें आप यह शाल प्रदान कर देवें तो ठीक रहेगा।" सारथि की बात सुन कर राजा चुप-चाप उन के सम्मुख बैठ गया और सारथि एक ओर अपने घोड़ों के पास बैठ गया।

धीरे-धीरे भगवान् भास्कर का उदय हुआ और उसकी देदी-

प्यमान प्रथम रश्मियाँ जब उस महात्मा जी के मुखमण्डल पर पड़ीं तो उन की आँखें खुलीं। आँखें खुलते ही उन्होंने क्या देखा कि एक कोई बड़ा धनी-मानी-सुसम्पन्न व्यक्ति उन के सम्मुख बैठा हुआ उन्हें प्रणाम कर रहा है। साधु ने आशीर्वाद देते हुए पूछा—"आप कौन हैं, और कैसे यहाँ पधारे?" इस पर वह व्यक्ति बोला-"महाराज! मैं इस प्रदेश का राजा हूँ। ऐसे ही प्रातःकाल उठा तो मन में घूमने की इच्छा हुई तो सारथि ने बग्घी लाकर खड़ी कर दी। मैं उस बग्घी पर भ्रमणार्थ निकला तो मैं ने दूर से आप के दर्शन किये। मुझे आप पर बड़ी दया आई, यह सोच कर कि, देखो हम तो इतने गर्म वस्त्र पहने हुए हैं तब भी हम ठण्ड के मारे मरे जा रहे हैं तो फिर आप का तो न जाने क्या हाल होगा? तभी मैं ने यहाँ आकर अपनी बग्घी रुकवाई और आकर यही सोचा कि और तो मेरे पास इस समय कुछ नहीं है। अतः मैं ने अपना दुशाला आप के कन्धों पर डाल दिया, पर आप बिल्कुल सीधे बैठे हुए थे और अपने ध्यान-भजन में मग्न थे। अतः वह शाल नीचे लुढ़क गया। फिर अपने सारथी के सुझाव के अनुसार मैं ने सोचा कि जब आप आँखें खोलेंगे तो तब आप को यह शाल भी दे दूंगा और बाद में और भी बहुत सारे वस्त्र भेज दूँगा। सो महाराज, शाल तो आप अभी ले लीजिये और अन्य कई वस्त्र मैं फिर सारथि के हाथ आपकी सेवा में भेज दूँगा।" यह सब कहते हुए वह शाल उस राजा ने उस साधु की ओर आगे बढ़ाते हुए कहा—"महाराज! लीजिये यह शाल।" साधु यह सब देख सुन कर

बोला–"राजन् ! यह शाल किसी गरीब को दे दो।" राजा बोला–"महाराज ! आप से बढ़ कर और कौन गरीब होगा ? क्योंकि मेरे राज्य में हर एक के पास चाहे वह कितना भी गरीब से गरीब व्यक्ति भी क्यों न हो, उस के पास भी कुछ न कुछ पहनने-ओढ़ने के वस्त्र अवश्य मिल जायेंगे, पर आप को तो मैं ने सब प्रकार से देख-भाल लिया है। आप के पास तो दो लंगोटों के अतिरिक्त कुछ और है ही नहीं। अतः मैं आप को यह शाल दे रहा हूँ और घर जाने पर और भी पहनने-ओढ़ने के वस्त्र भेजूँगा।" यह सुन कर साधु फिर बोला–"राजन् ! मैं आप से कह रहा हूँ कि आप इस शाल को किसी गरीब को ही दे दें। उस बिचारे का काम चल जायेगा। मुझे तो इस शाल की आवश्यकता ही नहीं है।" राजा बोला–"महाराज ! मेरी दृष्टि में आप से बढ़ कर कोई और निर्धन–गरीब मेरे राज्य में नहीं है। अतः मैं तो आप को ही यह शाल दूँगा···।" साधु ने सोचा कि यह राजा ऐसे पिण्ड नहीं छोड़ेगा, अतः उस ने राजा से कहा–"राजन् ! मैं सोना बनाना जानता हूँ, सोना···! अतः मैं इसे लेकर क्या करूँगा ?" यह बात सुन कर राजा के मुँह में पानी भर आया और वह मन ही मन सोचने लगा कि–"सचमुच यह साधु सोना बनाना जरूर जानता होगा, तभी तो यह हम से शाल एवं वस्त्रादि कुछ लेना ही नहीं चाहता···। अगर ऐसे महान् साधु से हमारी घनिष्ठता हो जाए और इस से प्रार्थना की जाए कि यह हमें सोना बनाना सिखा दे तो इस से हमारे राज्य की बहुत सी समस्याएं सहज ही हल

हो जायेंगी……।" यह सब सोच कर वह राजा धीरे से उस साधु से प्रार्थना करता है–"महाराज ! आप हम पर कृपा कर के हमें भी यदि सोना बनाना सिखा दें तो हमारी बहुत सी आर्थिक समस्याओं का सहज ही हल हो जायेगा। दूसरा हम हृदय से आप के सदा-सदा के लिये बड़े आभारी भी रहेंगे–कृतज्ञ भी रहेंगे…।"

यह सुनकर वह साधु बड़ा मुसकराया और बोला–"राजन् ! थोड़ी देर पहले तो तू मुझे अपने राज्य का सब से बड़ा गरीब और अपने आप को सब से बड़ा रयीस समझता था। मुझ पर तब तू रहम खा कर–मुझ पर तब तू दयार्द्रचित्त हो कर मुझे पहनने-ओढ़ने के वस्त्र आदि-आदि देना चाहता था, पर इस थोड़ी सी देर में न जाने ऐसा क्या परिवर्तन हो गया कि तू मुझे अब बहुत बड़ा रयीस–धनी-मानी और अपने आप को नानाविध अभावों से ग्रस्त एक सामान्य सा व्यक्ति समझ कर मेरे सम्मुख हाथ फैला बैठा। राजन् ! यह सब करते हुए तुझे जरा भी शर्म नहीं महसूस हुई–किञ्चित् भी लज्जा अनुभव नहीं हुई ?' राजा यह सब सुनकर भी अपना सिर नीचे को किये हुए चुपचाप बैठा रहा। वह साधु फिर बोला उस राजा को सम्बोधित करते हुए—"राजन् ! सच्ची बात तो यह है कि संसार में जिस के पास अपार धन-माल खजाना है फिर भी जिस की भूख अपार है–जिस की चाह अपार है तो वह राजा है, शाह है। पर इस संसार में जिस की चाह समाप्त हो गई है–जिसकी इच्छाएं समाप्त हो गई हैं–जिस की अभिलाषायें

समाप्त हो गई हैं, चिन्ताएं भी जिसकी मिट गई हैं और मन भी जिस का सदा बे-परवाह सा अर्थात सदा मस्त सा रहता है तथा जिस को कुछ भी नहीं चाहिये, वह तो शाह नहीं वरन् शहनशाह कहाता है, जैसा कि किसी कवि ने कहा है—

"चाह गई चिन्ता मिटी, मनुवा बे-परवाह ।
जिस को कुछ नहीं चाहिये, सो शाहन का शाह ।।"

खैर राजन् ! मैं तो साधु हूँ, सासांरिक रूप से तो जो कुछ मेरे पास है वह सब तो आप ने देख ही लिया है, फिर भी राजन् ! रहीम के शब्दों में—

रहिमन वे नर मर चुके जो कहीं मांगन जाहीं ।
तिन से पहले वे मुए, जिन मुख निकसत नाहीं ।।

वे नर तो मरे हुए के समान हैं जो कहीं माँगने के लिये हाथ फैला देते हैं–हाथ पसार देते हैं । और फिर उन से पहले वे नर ही मर चुकते हैं जिनके मुख से यह निकलता है कि-हमारे पास कुछ नहीं है । अतः राजन् ! अब आप ने हाथ फैला ही दिया है–हाथ पसार ही दिया है तो फिर हम उसे अब कभी खाली नहीं रहने देंगे, उस को अब जरूर हम भरने का प्रयास करेंगे ।" इस पर राजा बोला–"महाराज ! कुछ भी कह लो, पर हमें तो आप सोना बनाना सिखा दो ।" इस पर साधू बोला—"अच्छा राजन् !" आप

मेरे समीप प्रतिदिन प्रातः चार बजे आया करना, मैं तुझे सोना बनाना अवश्य सिखाऊंगा और तुम्हारी झोली अवश्य भरूंगा।" राजा बोला—"महाराज ! प्रातः चार बजे तो बड़ी सर्दी होती है, बड़ी ठण्ड होती हैं। आज ही जब मैं भ्रमण के लिये निकला तो रास्ते में मुझे बड़ी ठण्ड लगती रही···।" साधु बोला—"राजन् ! सोना तो फिर ऐसे ही थोड़ी बनता है। उस के लिये तो मनुष्य को बहुत बड़ा जप-तप करना पड़ता है।" राजा बोला-"महाराज ! आप जैसे कहेंगे, मैं वैसे ही सब जप-तप करूंगा, परन्तु आप मुझे सोना बनाना सिखा देवें। यह सब कह कर राजा चल दिया।

दूसरे दिन प्रातः फिर राजा उस बग्घी पर साधु के पास गया। और फिर आगे तो प्रतिदिन उस का वहाँ आना एक कार्य ही बन गया। दूसरे दिन जब राजा साधु के पास गया और उस ने उन्हें प्रणाम किया, तो साधु बोला—"राजन् ! आ गए ?"—"हाँ महाराज !" राजा बोला—"अच्छा तो आप सोना बनाना सीखना चाहते हैं।" साधु बोला। राजा ने बड़ी नम्रता से कहा—"महाराज ! इसलिये तो आप के आदेशानुसार यह बन्दा श्री चरणों में प्रभात काल की इन शुभ घड़ियों में उपस्थित हुआ है।" इस पर साधु बोला—"राजन् ! यह सारे कपड़े उतार दो और जाकर अन्दर जो एक लंगोट पड़ी है, वह पहन लो और मेरे पास आ जाओ।" राजा बोला—"महाराज ! मैं तो इतने कपड़े पहन कर भी ठण्ड के मारे ठिठुर रहा हूँ तो फिर इन सब को उतार

कर तो न जाने मेरा क्या हाल होगा ?" साधु बोला—"राजन् ! तू घबरा नहीं, तू मरेगा नहीं, वरन् तेरे में नवजीवन का सञ्चार होगा। और फिर तू चाहता तो है सोना बनाना, पर तू उस के लिये तप जप आदि कुछ करना नहीं चाहता, तो फिर भला तू ही बता, यह कैसे काम चलेगा ?" राजा बोला —"अच्छा महाराज ! जो कुछ आप आदेश देंगे मैं वह सब कुछ करने का प्रयास करूंगा।" राजा ने जाकर सब वस्त्र उतारे और उस साधु के आदेशानुसार लंगोट पहन कर आ खड़ा हुआ और बोला —"महाराज ! और क्या आज्ञा है।" साधु ने कहा— "जैसे-जैसे मैं तुम्हें यम-नियम आसन प्राणायाम धारणा ध्यान आदि बताऊं वैसे-वैसे वह सब तुम बड़े धैर्य से करते चले जाओ। प्रभु की कृपा रही तो तुम्हें अवश्य सफलता मिलेगी।" राजा को वह साधु पद्मासन, सिद्धासन मयूरासन, शीर्षासन आदि-आदि सब कुछ बताता रहा और साथ-साथ स्वयं कर के दिखाता भी रहा और राजा से भी वह वह सब जैसे-तैसे करवाता रहा। यह सब कार्य जब पांच-छः मास तक चलता रहा और कुछ सोने बनने की बात का जिक्र भी नहीं आया तो एक दिन बज सारथि ने अपने राजा को सिर नीचे और पैर ऊपर कर के उल्टा अर्थात् शीर्षासन करते हुए देखा तो उस को राजा पर बड़ी दया आई। वह मन ही मन तब हंसता हुआ सोचने लगा कि— "देखो ! हमारा राजा भी कितना बावला है, भला यह साधु सोना बनाना जानता होगा ! और मान लो यदि यह सोना बनाना

जानता भी होगा, तो क्या हमारे इस राजा के पास धन-माल-सोने चान्दी आदि की कुछ कमी है क्या, जो यहाँ रोज प्रातः साधु के दर पर आ खड़ा होता है। फिर भी यह लोभ कितनी अजीब चीज है जिस के कारण हमारे राजा साहब का सिर नीचे और पैर ऊपर को हो रहे हैं, यह सोच कर कि किसी प्रकार साधु से सोना हाथ लग जाए।" सच कहा है किसी ने कि धन-स्वर्ण का लोभ मानव को बड़े-बड़े नाच नचवा देता है।

इस प्रकार जब पर्याप्त समय हो गया अर्थात् जब वर्ष भर होने को आया तो राजा के धैर्य का बान्ध कुछ टूटने सा लगा और वह धीरे से उस साधु से आकर पूछता है—"महाराज ! कुछ सोना आदि बनेगा भी सही कि ऐसे ही मेरी ऐसी-तैसी करवाने में लग रहे हो—ऐसे ही मुझे हैरान-परेशान कर रहे हो।" साधु बोला—"राजन् ! एक घसियारा–घास खोदने वाला भी जब सारा दिन घास खोदता है तो कहीं शाम को अपनी दाल-रोटी लायक कुछ पैसे प्राप्त कर पाता है और तू सोना बनाना सीखने के लिये थोडा तप साधन आदि करने में ही घबरा गया। राजन् ! सोना अवश्य बनाना सिखाऊँगा, चिन्ता मत करो और अब तो तुम धीरे-धीरे अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर ही हो रहे हो।" इस के उपरान्त राजा को उस साधु ने प्रभु भक्ति भरे अच्छे-अच्छे भजन सिखाए जिन को वह साधु से सुन-सुन कर और स्वयं गा-गा कर कुछ मस्त सा भी रहने लगा। फिर आगे चल कर साधु ने

उसे प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान आदि का भी कुछ अभ्यास कराया जिस के परिणामस्वरूप उस का मन धीरे-धीरे ध्यान में भी एकाग्र होने लगा। वर्ष भर लगभग और व्यतीत होने पर राजा एक दिन ध्यान में बैठा था, तो साधु नें आकर उस को हिलाया। इस से उस राजा का ध्यान भंग हो गया और उस की आँखें खुल गयीं। साधु ने पूछा—"राजन्! कुछ चाहते हो?" राजा बोला—"महाराज! यदि मैं कुछ चाहता न होता, तो फिर मैं इतने दिनों से प्रतिदिन आप के द्वार पर आकर अपना सिर क्यों पटकता रहता!" इस पर साधु बोला—"राजन्! अब बहुत जल्दी वह समय आने वाला है जबकि तू अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेगा—।" राजा निरन्तर बड़ी श्रद्धा से वैसे ही प्रतिदिन उस साधु के पास आता रहा और वह उस के आदेशानुसार वह सब कुछ करता रहा जो कुछ कि वह साधु बतलाता रहा।

एक दिन जब प्रातः वह आया तो वह बहुत ही शीघ्र सिद्धासन में बैठ कर प्राणायाम पूर्वक ध्यान में लग गया। बहुत ही शीघ्र वह ध्यान में मग्न हो गया। उस दिन वह राजा ध्यान में ऐसा मग्न हो गया कि फिर उस की समाधि ही लग गयी। साधु ने उस दिन उस के पास जाकर उस को हिलाया। पर हिलाने पर भी आज उस की समाधि नहीं खुली। इस के उपरान्त साधु ने उस की किसी एक नस विशेष को दबाया। उस नस विशेष के दबाने पर राजा ने आँखें खोल दीं। साधु ने उस नस

विशेष से हाथ हटा कर जब उस से कुछ बात करनी चाही, तो इतने में फिर झट उस ने आँखें बन्द कर लीं और वह पुनः झट समाधिस्थ हो गया। साधु ने पुनः उस की वह नस दबाई तो फिर उस की आँखे खुल गयीं। नस पर से हाथ हटाते ही जब साधु ने पुनः कुछ बात करनी चाही तो फिर उसकी आँखे बन्द हो गयीं। साधु ने सोचा–"अब तोराजा से बात करने के लिए उसकी उस नस को बराबर दबाए रखना ही होगा।" साधुने ऐसा ही किया। राजा ने फिर जब आँखे खोलीं तो उस की आँखों से प्रेमाश्रु ढुलक आए, उसकी आँखों से आनन्दाश्रु बह निकले। और वह राजा तब बोला "महाराज! मत छेड़ो, महाराज! मुझे मत छेड़ो।" इस पर साधु बोला "राजन ! बोलो ! कुछ चाहते हो ?" राजा ने सिर हिलाते हुए सङ्केत किया–"नहीं।" पुनः साधु ने–पूछा"राजन्! कुछ चाहते हो" राजा ने अपना सिर हिलाते हुए पुनः सङ्केत किया– "नहीं।" इस पर साधु ने प्रसन्न होकर कहा–"राजन्! अब वह समय आगया है कि तुम चाहो तो सोना बना सकते हो, अब तुम चाहो तो स्वर्ण बना सकते हो। राजा ने तब प्रभु प्रेम में विभोर होकर अश्रुपूर्ण नेत्रों से साधु को उत्तर देते हुए, कहा कि–

मोती मिला है जबकि, मानस के मानसर में।
कङ्कर बटोरने की, क्यों कामना करुँ मैं ?

सचमुच जब मानव धन-वैभवों से जमीन–जायदादों से स्त्री-पुत्रों से, तात्पर्य यह है कि इन बाह्य सर्वविध ऐश्वर्यों से

आँख मून्द कर जब यम नियम आसान प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधि द्वारा उस ऐश्वर्यों के ऐश्वर्य अर्थात् उस परमैश्वर्य रूप प्राणों से प्यारे प्रभु को पालेता है, उस का साक्षात्कार कर लेता है, तो फिर उसको ये सांसारिक ऐश्वर्य भाते ही नहीं, ये सासांरिक धन-वैभव-सोना-चान्दो-रत्न-मणी आदि प्रिय लगते ही नहीं। वह ता तब कवि के शब्दों में सर्वत्र यही गुन गुनाना हुआ नजर आता है कि-"जब मैंने उस परमैश्वर्य को पा लिया हैं तो फिर अब मैं इस अवर ऐश्वर्य को बटोरने को कामना क्यों करूं ? अब जब मैंन उस परम सौभाग्य को-परमानन्द को पा लिया है तो फिर अब मैं इन सांसारिक सुख-सौभाग्यों की वा इन सांसारिक विषय वासनाओं की अब क्यों कामना करूं।

सचमुच यह वह स्थिति है जिसमें कि मनुष्य अपने चरम लक्ष्य को अपने परमोद्देश्य को-अपने अन्तिम उद्देश्य को पालेता है और फिर उसे भीतर से वह शान्ति, वह तृप्ति, वह आनन्द सदा मिलता रहता है कि जिस के मिलने के बाद फिर सदा वह उसी में ही विभोर रहता है। इसी का नाम ब्रह्मलोक है, इसी का नाम ब्राह्मी स्थिति है, इसी का नाम मोक्ष है, इसी का नाम मुक्ति है। बस फिर तो चक्र भ्रमणवत् संस्कार शेष रूप में जब तक शरीर चलता रहता है, चलता रहता है। उस संस्कार शेष के भी समाप्त होने पर फिर वह जीव सुदीर्घकाल पर्यन्त मोक्ष का आनन्द भोगता रहता है।

"श्रद्धा साहित्य प्रकाशन" द्वारा श्रद्धापूर्वक दान देने वाले महानुभावों के सहयोग से लेखक की प्रकाशित पुस्तकें—

क्रम सं०	नाम पुस्तक	प्र० सं	द्वि० सं०	तृ० सं०
१	प्रार्थना सुमन, भाग–१	११००	४०००	४०००
२	कौन चैन की नींद नहीं सो सकते और उसके उपाय	२०००	२०००	४०००
३	वेद सुधा, भाग–१	२०००	४०००	
४	विदुर जी की दृष्टि में बुद्धिमान् कौन ?, भाग–१	२०००	४०००	
५	महान् विदुर के महान् उपदेश	२०००		
६	वेद सुधा, भाग–२	२०००	४०००	
७	विनय सुमन, भाग–१	२०००	४०००	
८	प्रार्थना प्रदीप, भाग- १	२०००	४०००	
९	प्रार्थना प्रसून, भाग–१	२०००	४०००	
१०	प्रार्थना सुमन, भाग–२	२०००	४०००	
११	विनय सुमन, भाग- २	२०००	४०००	
१२	अनन्त की ओर	२०००	४०००	
१३	वैदिक पुष्पाञ्जलि, भाग–१	२०००		
१४	वैदिक पुष्पाञ्जलि, भाग–२	२०००		
१५	वैदिक पुष्पाञ्जलि भाग–३ (अप्रकाशित)			
१६	वैदिक पुष्पाञ्जलि भाग–४ (अप्रकाशित)			
१७	वैदिक गृहस्थाश्रम (सुखी गृहस्थ)	३०००	४०००	
१८	प्रभात वन्दन	३०००		
१९	शयन विनय	४०००		
२०	वेदोपदेश, भाग–१	४०००	३०००	
२१	वैदिक रश्मियां, भाग–१	४०००		
२२	विनय सुमन, भाग–३	३०००		
२३	विदुरजी की दृष्टि में···भाग–२	४०००		
२४	वैदिक आदर्श परिवार	४०००		
२५	वैदिक रश्मियाँ भाग—२	३०००		
२६	(ब्रह्म यज्ञ) वैदिक संध्या	४०००		
२७	वैदिक रश्मियाँ भाग–३	३०००		
२८	कल्याणी 'वरदा वेदमाता'	४०००		